विपाशा
हिमाचल प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग की द्वैमासिक पत्रिका

क्रम

३ पाठकीय
५ संपादकीय

निधि
7 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
9 नाटक : अंधेर नगरी चौपट राजा
19 कविताएं
21 निबंध : जातीय संगीत

लेख
23 गुलेरी साहित्य की मूल संवेदना : डा० सत्यपाल शर्मा

कहानी
29 उसका खुदा : अरुण भारती
36 भाषान्तर : पंख (मराठी कहानी) : दया पवार
41 देशान्तर : आशा (उजबेकी कहानी) : पिरिमकुल कादीरोव

कविता
47 तीन कविताएं : रामदरश मिश्र
50 दो कविताएं : कुमार विकल
51 दो कविताएं : अमिताभ
54 दो कविताएं : जयप्रकाश नवेन्दु
56 तीन कविताएं : यादवेन्द्र शर्मा
59 दो कविताएं : अजीत कुमार

समीक्षा
61 उभरते इतिहास और दबते भूगोल की तपिश : सृंजय
65 सलमा ख़ातून, घच्घे घाघ और धवल घास : श्रीनिवास श्रीकांत

लोक संस्कृति
69 किन्नर संस्कृति में खश आग्नेय तत्व : डॉ० डी० डी० शर्मा

पुरातत्त्व
77 मानगढ़ का उत्तर गुप्त कालीन शिव मंदिर : रमेश चन्द्र

प्रतिभा
82 नये कीर्तिमान : सुमन रावत : ब्रह्मदेव शर्मा

कला
85 मूर्तिकार महेश चन्द्र सक्सेना : हरिश्चन्द्र राय
89 कलाधरोहर : कार्यक्रमों की परिकल्पना : कलाधर

आयोजन
93 संस्कृत दिवस समारोह : सोलन : डा० ईश्वरी दत्त
96 उषा अनिरुद्ध चित्र सीरीज कथा

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, इनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

पाठकीय

अंक तेरह

अनिल शर्मा (अजीत नगर, अंबाला)

विपाशा को पढ़कर मन प्रसन्न हुआ। सच में आप लोग महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं। मगर इसका प्रचार अन्य प्रदेशों में करना भी आवश्यक है। न जाने कितने साहित्य के भूखे इस पत्रिका से वंचित हैं।

सुरेन्द्रसिंह (चण्डीगढ़)

अंक-13 में हंगारी कहानी बहुत अच्छी लगी। बाकी सामग्री भी स्तरीय है। अपने संपादकीय में आपने जो बात उठायी कि 'बहुत बार यह समझा जाता है कि पत्रिकाएं केवल लेखकों की रचनाओं को प्रकाशित करने के लिए निकाली जाती हैं···व्यापक पाठक जगत् को अनदेखा नहीं किया जा सकता'—यह बात सरकारी पत्रिकाओं के साथ अक्सर होती है। इनमें हर तीसरा व्यक्ति साग्रह बतौर लेखक छपना चाहता है और ऐसी पत्रिकाओं के संपादकों पर भी तरह-तरह के दबाव बराबर बने रहते हैं। इस सबका परिणाम होता है कि पत्रिकाओं का स्तर बहुत गिर जाता है। यही कारण है कि 'सरकारी पत्रिका' नाम की चीज साहित्य में अलग पड़ जाती है। लेकिन विपाशा को देखकर लगता है कि इसमें सरकारीयत की बू कम और साहित्य की सुगन्ध बनी है।

रोहित मदान (दिल्ली)

विपाशा के पिछले अंक देखे हैं। इसे देखकर लगता है कि सचमुच दूर पहाड़ से कुछ आया है—मन्दिर, मूर्तियां, बर्फ ढके पहाड़ और वहां के रचनाकारों की रचनाएँ भी। मुझे यह बात अच्छी लगी कि इस पत्रिका के माध्यम से बहुत सारे ऐसे नाम सामने आ रहे हैं जिन्हें इधर की लघु तथा व्यावसायिक पत्रिकाओं में कभी नहीं पढ़ा। संभवत: किसी पत्रिका से ऐसी उम्मीद करनी भी चाहिए क्योंकि इधर विशेष रूप से दिल्ली जैसे नगरों से जो स्थापित पत्रिकाएं निकलती हैं उनमें लगभग वही रचनाकार बार-बार दिखाई देते हैं। रचनाओं का स्तर चाहे उतना ऊंचा न भी हो फिर भी संभावनाशील लोगों को प्रस्तुत करना अच्छी बात है।

कीर्ति कमल (कानपुर)

अंक 13 का आवरण हिमाचल के प्रति जिज्ञासा पैदा करता है । देवताओं, झरनों और प्राकृतिक सौन्दर्य से भरे पड़े हिमाचल प्रदेश के बाल-युवा क्या सचमुच आवरण के दूसरे पृष्ठ में प्रकाशित किन्नौरी किशोर की तरह सुंदर, हंसते-खिलते और वस्त्रों-आभूषणों से सजे हुए हैं ? क्या यह जीवन का सहज रूप है या स्टुडियो की पोशाक में 'रेडी' की हंसी । कुछ भी हो हिमाचल को अभिव्यक्ति देते हैं ये चित्र । बधाई ! इसके साथ मियां गोवर्धन सिंह हिमाचल की पौराणिकता को लेकर जो कुछ लिख रहे हैं वह सब अगर सही है तो हिमाचल के प्रति आकर्षण और बढ़ जाता है ।

मुनीश कुमार (मेरठ)

विपाशा की सारी सामग्री में समकालीन साहित्य का मूल्यांकन करने वाले विस्तृत लेख और वैचारिक पक्ष को लेकर बहस कम जा रही है । पुस्तक समीक्षाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी सामग्री भी दी जानी चाहिए जिससे आज के रचना कर्म को लेकर कुछ ठहर कर सोचा समझा भी जा सके । अपने प्रदेश की साहित्य-कला व संस्कृति सम्बन्धी गतिविधियों के विवरण भी आप दे रहे हैं, यह अच्छी बात है ।

रवीन्द्र प्रसाद (हमीरपुर)

विपाशा का आवरण एक तरह से कला को समर्पित है यह अच्छी बात है । इसके साथ ही प्रदेश के कलाकारों में जो लोग कुछ ऐसा काम कर रहे हैं जिसका नोटिस लिया जाना चाहिए ऐसे लोगों को लेकर भी कुछ सामग्री दी जानी चाहिए ।

राज कुमार सकलानी (धर्मपुर, सरकाघाट)

अंक तेरह में 'छुनछुना' और 'गधे की प्रशंसा में' कहानियां अच्छी लगीं । बाकी लेख आदि में कुछ ऐसी गहरी बातें होती हैं जो हमारे जैसे लोगों की समझ में कम ही आती हैं। गोवर्धनसिंह जी के लेखों से हिमाचल के अतीत का ज्ञान मिलता है।

श्याम लाल शशि (धर्मशाला)

हिमाचल प्रदेश में पिछले कई वर्षों से साहित्य सम्बन्धी आयोजन बराबर होते रहे हैं । विभिन्न भाषाओं के समारोह आयोजित किये जाते हैं और कवि सम्मेलनों में पचासों कवि भाग लेते हैं । लेकिन प्रदेश से प्रकाशित हो रही पत्रिकाओं के माध्यम से प्रादेशिक लेखकों का कुछ ऐसा लेखन देखने में नहीं आ रहा जिसे वास्तव में महत्वपूर्ण कहा जा सके । कवि सम्मेलनों में वर्षों पुरानी रचनाएं सुनने को मिलती हैं और कहानियां तो और भी बहुत कम लिखी जा रही हैं। ढेर सारी योजनाओं के बावजूद अगर यही हाल है तो इसमें आखिर किसका दोष है । संस्कृति को लेकर जो सामग्री अलग-अलग जगहों में छप रही हैं उसमें पूर्व प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त नया बहुत कम होता है । हैरानी यह जानकर होती है कि कुछ लोग केवल गुलेरी जी पर लिखते लगते हैं और कुछ यशपाल पर । उसमें भी लगभग वही दोहराव रहता है । यह सारी स्थिति संतोषजनक नहीं दीखती ।

संपादकीय

लिखने और बोलने के बीच

प्रसिद्ध इतिहासकार ग्रियर्सन ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधुनिक हिन्दी का जनक और तुलसीदास के बाद का महानतम लेखक माना है। उनके अनुसार हरिश्चन्द्र ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने अन्य किसी भी भारतीय लेखक की अपेक्षा देशी बोली में रचित साहित्य को लोकप्रिय बनाने में सर्वाधिक योगदान किया है।

भारतेन्दु का समग्र लेखन काव्य, नाटक, निबन्ध तथा इतिहास आदि अनेक विधाओं में मौलिक सृजन से लेकर रूपान्तरण तथा अनुवाद तक फैला हुआ है और पत्रकारिता तो एक तरह से उनके साहित्य-कर्म की धुरी ही रही। लेखन के साथ-साथ रंगमंच तथा अपने व्यवहारिक जीवन के दूसरे पक्षों के माध्यम से भी वह अपने समय की समस्याओं से बराबर जूझते रहे। कुछ बाद की रचनाओं में वह इस बात पर भी बल देते हैं कि विभिन्न धर्मों व सम्प्रदायों के लोग पहले अपने को भारतीय समझें और देश की प्रगति में कंधा मिलाकर चलें। उन्नीसवीं शताब्दी के उस परम्परा मूलक काल में भी इस तरह की प्रगतिशील दृष्टि ही भरतेन्दु के कृतित्व को कालजयी बनाती है। सौ से भी अधिक वर्षों पहले जो उन्होंने लिखा वह किसी-न-किसी स्तर पर आज भी प्रासंगिक है।

भरतेन्दु के समूचे कृतित्व का परिचय पाने के बाद जब हम यह जान लेते हैं कि उनका लगभग पैंतीस वर्षों का ही अल्प जीवन रहा और उसमें करीब अठारह वर्षों की सक्रियता में यह सब रचना की, तो आश्चर्य होता ही है। इतनी कम आयु में रचना में इतनी श्रेष्ठता अर्जित कर लेना और अनेक दिशाओं में जीवन्त उदाहरण छोड़ जाना कोई साधारण उपलब्धि नहीं है।

आज हम देखते हैं कि साहित्यकार चालीस-पैंतालीस वर्षों की आयु तक 'युवा लेखक' की संज्ञा लेकर एकाध रचना के रहते भी अपने को धन्य मानता है। आखिर ऐसे रचनाकार कितने हैं जो भारतेन्दु जितनी कम उम्र में न सही, बल्कि उनसे दोगुना उम्र में भी इतना कुछ लिख पाते हों। वास्तव में आज 'लिखा' कम और 'बोला' ज्यादा जा रहा है। राजनीति की तर्ज पर सम्मेलनों व गोष्ठियों में प्रैस

कान्फ्रेंस की तरह बयान जारी करना लगातार प्रमुख होता जा रहा है। सृजनात्मकता पर एकाग्र होने की बजाय कई तरह की हवाई बहसों में रचनाकार उलझते जाते हैं। यहाँ यह तात्पर्य कतई नहीं कि ये सारी बहसें निरर्थक हैं लेकिन देखा यह जाता है कि बहुत बार कितनी ही माथापच्ची के बाद भी अन्ततः हाथ कुछ नहीं लगता। ऐसे दौर में बहुत कम अवधि के भीतर अधिक महत्वपूर्ण रचना करने वाले भारतेन्दु जैसे लेखक निश्चित रूप से हमारी प्रेरणा बन सकते हैं। उनके कृतित्व की ओर इंगित करती हुई कुछ रचनाएं 'निधि' स्तम्भ में दी जा रही हैं। उम्मीद है पाठक आज भी उनकी 'नगरी' से गुजरना पसन्द करेंगे।

विपाशा के एक पाठक का यह सवाल ध्यान आकर्षित करता है कि हिमाचल के प्रादेशिक हिन्दी लेखन में ऐसा कुछ प्रकाश में नहीं आ रहा जिसे वास्तव में महत्वपूर्ण कहा जा सके। कुछ योजनाओं के चलते अब तक की अपनी सारी रचनाओं को पुस्तकाकार प्रस्तुत कर पाना एक अलग बात है और एक नैरन्तर्य के साथ रचना करना दूसरी बात। जब पत्रिकाओं के लिए प्रकाशन योग्य पर्याप्त रचनाएं ही आसानी से नहीं मिल पातीं तो उस स्थिति की कल्पना करना ही निरर्थक रह जाता है जिसमें ढेर सारी सामग्री में से चुनी हुई रचनाएँ देकर पाठकों के सामने कुछ बेहतर प्रस्तुत किया जा सके। हम जानते ही हैं कि कौन क्या लिख रहा है। वास्तव में जब किसी सम्मेलन या रेडियो से बुलावा आने पर तात्कालिक लाख कोशिशों के बावजूद ऐसा कुछ नहीं बन पाता जो कुछ वैसा कर सके जिसे 'जमना' कहते हैं तो परिणामस्वरूप पुरानी रचनाएं ही दोहराई जाती रहेंगी। लेकिन ऐसी स्थिति में यह समझना बहुत बड़ी भ्रांति होगा कि इस तरह की सम्मेलनी गतिविधियों से ही हम अपने रचना-कर्म को आगे ले जा रहे हैं या दूसरे शब्दों में अपने लेखक को कहीं बचाए हुए हैं। अन्ततः किसी भी रचनाकार के लिए पहली और अन्तिम शर्त उसकी रचना ही कही जा सकती है।

आगामी अंक में डा० रामविलास शर्मा से सुधीर रंजन सिंह की लम्बी बातचीत के साथ कहानियां, कविताएं तथा कला-संस्कृति सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री रहेगी।

निधि

प्रस्तुति: तिलोत्तमा रंजन

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(1850-1885)

'भारतेन्दु' नाम नहीं उपाधि है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मित्र पं० रामेश्वर व्यास ने 27 सितम्बर 1880 के 'सारसुधानिधि' में यह उपाधि प्रस्तावित की थी। तब से, 'भारतेन्दु' हिन्दी भाषा और साहित्य के आन्दोलन का देदीप्यमान प्रतीक है।

भारतेन्दु प्रतीक हैं लोक-जागरण के; भारतेन्दु प्रतीक हैं स्वाधीन चेतना के; भारतेन्दु प्रतीक हैं हिन्दी जाति के सांस्कृतिक उत्थान के; भारतेन्दु प्रतीक हैं 'निज-भाषा' के उत्थान के। 19-वीं शती में जिस नव-जागरण का उभार सर्वप्रथम बंगाल में लक्षित हुआ था, हिन्दी क्षेत्र में उसका विस्तार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। भारतेन्दु हिन्दी-नवजागरण के अग्रदूत हैं।

हरिश्चन्द्र का जन्म बनारस के एक सम्पन्न परिवार में सितम्बर, 1850 में हुआ था। उनके पिता गोपाल चन्द्र के दो बेटे थे। दूसरे बेटे ने तो पारम्परिक व्यापार का काम संभाला परंतु बड़े बेटे हरिश्चन्द्र में ऐसी आश्चर्यजनक सर्जनात्मक प्रतिभा थी जिसके फलस्वरूप हिन्दी भाषा और साहित्य को नयी दिशा मिली।

पत्रकारिता, नाट्यलेखन, निबन्ध, उपन्यास, कविता, आलोचना आदि सभी क्षेत्रों में भारतेन्दु अपने युग के लेखकों के लिए प्रेरणा-व्यक्तित्व बने। यों तो हिन्दी पत्रकारिता की शुरुआत 'उदन्त मार्तण्ड' (1826) से होती है, किन्तु उसका सशक्त स्वरूप भारतेन्दु-सम्पादित 'कविवचन-सुधा' और 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' से सामने आया। इन पत्रिकाओं के आदर्श पर उस युग में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। भारतेन्दु-युग की सबसे सशक्त विधा है—निबन्ध। भारतेन्दु ने हिन्दी की अपनी निबन्ध-परम्परा को विकसित किया था। उसका रूप

फ्रेंच और अंग्रेज़ी की निबन्ध-परम्परा द्वारा गृहीत नहीं है। भारतेन्दु-युगीन निबन्धों में जो उन्मुक्तता है, वह हिन्दी में भी बाद में दुर्लभ रही। भारतेन्दु ने नाटक पर एक विस्तृत निबन्ध लिखा था। हिन्दी आलोचना का प्रारम्भ उसी निबन्ध से माना जाता है। निबन्ध और आलोचना ही नहीं, भारतेन्दु हिन्दी भाषा के नाटककार भी प्रथम थे। 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी', 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' जैसे नाटकों की परम्परा का यदि आगे भी समुचित विकास हुआ होता तो आज हिन्दी नाटक और रंगमंच की स्थिति ही कुछ और होती। अपने लगभग डेढ़ दर्जन मौलिक तथा संस्कृत, बंगला और अंग्रेज़ी से रूपान्तरित नाटकों के लिए एक अग्रणी हिन्दी नाटककार के रूप में भारतेन्दु सर्वमान्य हैं। खड़ी बोली कविता का विकास भारतेन्दु के बाद हुआ किन्तु उसकी शुरुआत भारतेन्दु-युग में ही हो गई थी। खुद भारतेन्दु ने खड़ी बोली में अनेक सफल कविताओं की रचना की थी।

हरिश्चन्द्र ने हिंदी में भक्ति तथा प्रेम के लगभग तीन हज़ार गीत लिखे। ये गीत 'हिंडोला', 'पूर्वी', 'कल्याण' तथा 'विहाग' आदि अनेक छंदों में लिखे गए हैं। ये गीत लगभग बीस पुस्तकों में संगृहीत हैं।

भारतेन्दु की हिन्दी अपने युग में आदर्श हिन्दी मानी गई थी। उस युग में हिन्दी के बहुत कम ही लेखक रहे होंगे जो भारतेन्दु द्वारा बनाये मार्ग पर न चले हों। बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, पं० बदरीनारायण चौधरी, और राधाचरण गोस्वामी जैसे प्रतिभा-सम्पन्न लेखक भी उनकी भाषा-नीति के अनुगामी रहे हैं।

भारतेन्दु ने लिखा था: 'हिन्दी नई चाल में ढली, सन् 1873 ई०।' 1873 ई०— यानी भारतेन्दु द्वारा सम्पादित 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' के प्रकाशन का प्रथम वर्ष।

'हिन्दी नई चाल में ढली, 1873 ई०'—यह हिन्दी साहित्य के इतिहास का अकाट्य तथ्य है। अभी 1873 को मात्र एक सौ चौदह वर्ष हुए हैं। इतने कम समय में हिन्दी की जैसी प्रगति हुई है, वह दुनिया की किसी भी भाषा के लिए प्रतिस्पर्द्धा का विषय हो सकती है।

हिन्दी भाषा के विकास का प्रश्न सिर्फ़ भाषा के विकास का प्रश्न नहीं है, यह हमारे जातीय जीवन के विकास के प्रश्न से जुड़ा है। रामविलास शर्मा ने ठीक लिखा है, "भारतेन्दु ने खड़ी बोली के हिन्दी रूप को संवारकर हमारी जाति की सांस्कृतिक आवश्यकताएं पूरी कीं।" इस दृष्टि से, हम भारतेन्दु का जितना भी ऋण स्वीकार करें, वह कम होगा।
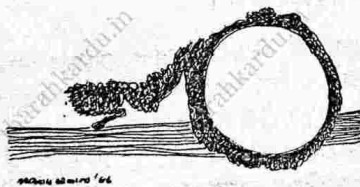
अंधेर नगरी चौपट्ट राजा

टके सेर भाजी टके सेर खाजा

प्रथम दृश्य

[बाह्य प्रान्त]

[महन्त जी दो चेलों के साथ गाते हुए आते हैं]

सब : राम भजो राम भजो राम भजो भाई।
राम के भजे से गनिका तर गई,
राम के भजे से गीध गति पाई।
राम के नाम से काम बनै सब,
राम के भजन बिनु सबहि नसाई ।।
राम के नाम से दोनों नयन बिनु,
सूरदास भए कबिकुलराई।
राम के नाम से घास जंगल की,
तुलसी दास भए भजि रघुराई ।।

महन्त : बच्चा नारायण दास ! यह नगर तो दूर से बड़ा सुन्दर दिखलाई पड़ता है ! देख, कुछ भिच्छा-उच्छा मिलै तो ठाकुरजी को भोग लगै। और क्या !

ना० दा० : गुरु जी महाराज ! नगर तो नारायण के आसरे से बहुत ही सुन्दर है जो है सो, पर भिच्छा सुन्दर मिलै तो बड़ा आनन्द होय।

महन्त : बच्चा गोबरधन दास ! तू पश्चिम की ओर से जा और नारायण दास पूरब की ओर जाएगा। देख, जो कुछ सीधा-सामग्री मिलै तो श्री शालग्राम जी का बालभोग सिद्ध हो।

गो० दा० : गुरु जी ! मैं बहुत-सी भिच्छा लाता हूं। यहां लोग तो बड़े मालवर दिखलाई पड़ते हैं। आप कुछ चिन्ता मत कीजिए।

महन्त : बच्चा, बहुत लोभ मत करणा। देखना, हां :
लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहीं कीजिए, या मैं नरक निदान ।।

[गाते हुए सब जाते हैं]

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

[बाज़ार]

कबाबवाला : कबाब गरमा गरम मसालेदार—चौरासी मसाला बहत्तर आंच का—कबाब गरमागरम मसालेदार—खाय सो होंठ चाटै, न खाय सो जीभ काटै। कबाब लो, कबाब का ढेर—बेचा टके सेर।

घासीराम : चने जोर गरम—
चने बनावैं घासीराम। जिन की झोली में दूकान।।
चना चुरमुर चुरमुर बोलै। बाबू खाने को मुंह खोलै।।
चना खावैं तौकी मैना। बोलै अच्छा बना चबैना।।
चना खायं गफूरन मुन्ना। बोलै और नहीं कुछ सुन्ना।।
चना खाते सब बंगाली। जिन की धोती ढीली ढाली।।
चना खाते मियां जुलाहे। डाढ़ी हिलती गाह बगाहे।।
चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते।।
चने जोर गरम—टके सेर।

नरंगीवाली : नरंगी ले नरंगी—सिलहट की नरंगी, बुटबल की नरंगी, रामबाग की नरंगी, आनन्दबाग की नरंगी। भई नीबू से नरंगी। मैं तो पिय के रंग न रंगी। मैं तो भूली लेकर संगी। नरंगी ले नरंगी। कंवला नींबू, मीठा नींबू, रंगतरा, संगतरा। दोनों हाथों लो—नहीं पीछे हाथ ही मलते रहोगे। नरंगी ले नरंगी। टके सेर नरंगी

हलवाई : जलेबियां गरमा गरम। ले सेव इमरती लड्डू गुलाबजामुन खुरमा बुंदिया बरफी समोसा पेड़ा कचौड़ी दालमोठ पकौड़ी घेवर गुपचुप। हलुआ हलुआ ले हलुआ मोहनभोग। मोयनदार कचौड़ी, कचाका हलुआ नरम चमाका। घी में गरक चीनी में तरातर चासनी में चभाचभ। ले भूरे का लड्डू। जो खाय सो भी पछताय जो न खाय सो भी पछताय। रेवड़ी कड़ाका। पापड़ पड़ाका। ऐसी जात हलवाई जिसके छत्तिस कौम हैं भाई। जैसे कलकत्ते के विलसन मन्दिर के भितरिए, वैसे अंधेर नगरी के हम। सब समान ताजा। खाजा ले खाजा। टके सेर खाजा।

कुंजड़िन : ले धनिया मेथी सोआ पालक चौराई बथुआ करेमूं नोनियां कुलफा कसारी चना सरसों का साग। मरसा ले मरसा। ले बैंगन लौआ कोहड़ा आलू अरुई बण्डा नेनुआं सूरन रामतरोई तोरई मुरई ले आदी मिरचा लहसुन पियाज टिकोरा। ले फालसा खिरनी आम अमरूत निबुआ मटर हो रहा। जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर।

जुगल : बादाम पिस्ते अखरोट अनार विहीदाना मुनक्का किशमिश अंजीर आबजोश आलूबोखारा चिलगोजा सेब नाशपाती विही सरदा अंगूर की पिटारी।

अमारा ऐसा मुल्क जिसमें अंगरेज का भी दांत कट्टा ओ गेया। नाहक को रुपया खराब किया। हिन्दोस्तान का आदमी लक लक हमारे यहां का आदमी बुंबक बुंबक लो सब मेवा टके सेर।

पाचकवाला : चूरन अमल बेद का भारी। जिसको खाते कृष्ण मुरारी ।।
मेरा पाचक है पचलोना। जिस को खाता श्याम सलोना ।।
चूरन बना मसालेदार। जिसमें खट्टे की बहार ।।
मेरा चूरन जो कोई खाय। मुझ को छोड़ कहीं नहिं जाय ।।
हिन्दू चूरन इस का नाम। विलायत पूरन इस का काम ।।
चूरन जब से हिन्द में आया। इसका धन बल सभी घटाया ।।
चूरन ऐसा हट्टा कट्टा। कीना दांत सभी का खट्टा ।।
चूरन चला दाल की मंडी। इस को खाएंगी सब रंडी ।।
चूरन अमले सब जो खावैं। दूनी रिश्वत तुरत पचावैं ।।
चूरन नाटकवाले खाते। इसकी नकल पचा कर लाते ।।
चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते ।।
चूरन खाते लाला लोग। जिनको अकिल अजीरन रोग ।।
चूरन खावैं एडिटर जात। जिन के पेट पचै नहिं बात ।।
चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिंद हजम कर जाता ।।
चूरन पूलिसवाले खाते। सब कानून हजम कर जाते ।।
ले चूरन का ढेर, बेचा टके सेर ।।

मछलीवाली : मछरी ले मछरी।
मछरिया एक टके कै बिकाय।
लाख टका के वाला जोबन, गाहक सब ललचाय।
नैन मछरिया रूप जाल में, देखतहि फंसि जाय।
बिनु पानी मछरी सो विरहिया, मिले बिना अकुलाय ।।

जातवाला(ब्राह्मण) : जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जायं और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था कर दें। टके के वास्ते झूठ को सच करें। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचैं, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानैं, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावैं। वेद धर्म्म कुल मरजादा सचाई बड़ाई सब टके सेर। लुटाय दिया अनमोल माल ले टके सेर।

बनिया : आटा दाल लकड़ी नमक घी चीनी मसाला ले टके सेर।

[बाबा जी का चेला गोबर्धनदास आता है और सब बेचनेवालों की आवाज सुन-सुनकर खाने के आनन्द में बड़ा प्रसन्न होता है।]

गो० दा० : क्यों भाई बणिये, आटा कितणे सेर ?

बनिया : टके सेर।

गो० दा० : औ चावल ?

बनिया : टके सेर।

गो० दा० : औ चीनी ?

बनिया : टके सेर।

गो० दा० : औ घी ?

बनिया : टके सेर।

गो० दा० : सब टके सेर ! शचमुच।

बनिया : हां महाराज, क्या झूठ बोलूंगा ?

गो० दा० : (कुंजड़िन के पास जाकर) क्यों भाई, भाजी क्या भाव ?

कुंजड़िन : बाबा जी, टके सेर। निनुआं मुरई धनिया मिरचां साग सब टके सेर।

गो० दा० : सब भाजी टके सेर ! वाह वाह ! बड़ा आनंद है। यहां सभी चीज टके सेर। (हलवाई के पास जाकर) क्यों भाई हलवाई ? मिठाई कितणे सेर ?

हलवाई : बाबा जी ! लडुआ हलुआ जलेबी गुलाबजामुन खाजा सब टके सेर।

गो० दा० : वाह ! वाह! बड़ा आनन्द है। क्यों बच्चा, मुझसे मसखरी तो नहीं करता ? शचमुच सब टके सेर ?

हलवाई : हां बाबा जी, सचमुच सब टके सेर। इस नगरी की चाल ही यही है। यहां सब चीज टके सेर बिकती है।

गो० दा० : क्यों बच्चा ! इस नगरी का नाम क्या है ?

हलवाई : अंधेर नगरी।

गो० दा० : और राजा का क्या नाम है ?

हलवाई : चौपट राजा।

गो० दा० : वाह ! वाह ! अंधेर नगरी चौपट राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा (यही गाता है और आनन्द से बगल बजाता है)।

हलवाई : तो बाबा जी, कुछ लेना देना हो तो लो दो।

गो० दा० : बच्चा, भिक्षा मांग कर सात पैसे लाया हूं, साढ़े तीन सेर मिठाई दे दे, गुरु चेले सब आनन्दपूर्वक इतने में छक जायेंगे।

[हलवाई मिठाई तौलता है—बाबा जी मिठाई लेकर खाते हुए और अंधेर नगरी गाते हुए जाते हैं।]

(पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य

[स्थान जंगल]

[महन्त जी और नारायणदास एक ओर से 'राम भजो' इत्यादि गीत गाते हुए आते हैं और एक ओर से गोबर्धनदास अंधेर नगरी गाते हुए आते हैं]

महन्त : बच्चा गोवर्धनदास ! कह, क्या भिक्षा लाया ? गठरी तो भारी मालूम पड़ती है।

गो० दा० : बाबा जी महाराज ! बड़े माल लाया हूं, साढ़े तीन सेर मिठाई है।

महन्त : देखूं बच्चा ! (मिठाई की झोली अपने सामने रखकर खोल कर देखता है) वाह !

वाह ! बच्चा ! इतनी मिठाई कहां से लाया ? किस धर्म्मात्मा से भेंट हुई ?

गो० दा० : गुरुजी महाराज ! सात पैसे भीख में मिले थे, उसी से इतनी मिठाई मोल ली है ।

महन्त : बच्चा ! नारायण दास ने मुझसे कहा था कि यहां सब चीज टके सेर मिलती है, तो मैंने इसकी बात का विश्वास नहीं किया । बच्चा, यह कौन-सी नगरी है और इसका कौन सा राजा है, जहां टके सेर भाजी और टके ही सेर खाजा है ?

गो० दा० : अन्धेरनगरी चौपट्ट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा ।

महन्त : तो बच्चा ! ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं है, जहां टके सेर भाजी और टके सेर खाजा हों ।

दोहा : सेत सेत सब एक से, जहां कपूर कपास
ऐसे देस कुदेस में, कबहुं न कीजे बास ।।
कोकिल वायस एक सम, पंडित मूरख एक ।
इन्द्रायन दाड़िम विषय, जहां न नेकु विवेक ।।
बसिए ऐसे देस नहिं, कनक वृष्टि जो होय ।
रहिए तो दुख पाइये, प्रान दीजिए रोय ।।
सो बच्चा चलो यहां से । ऐसी अन्धेरनगरी में हजार मन मिठाई मुफ्त की मिले तो किस काम की ? यहां एक छन नहीं रहना ।

गो० दा० : गुरुजी, ऐसा तो संसार भर में कोई देस ही नहीं है । दो पैसा पास रहने ही से मजे में पेट भरता है । मैं तो इस नगर को छोड़कर नहीं जाऊंगा । और जगह दिन भर मांगो तो भी पेट नहीं भरता । वरंच बाजे बाजे दिन उपास करना पड़ता है । सो मैं तो यहीं रहूंगा ।

महन्त : देख बच्चा, पीछे पछतायगा ।

गो० दा० : आपकी कृपा से कोई दुःख न होगा; मैं तो यही कहता हूं कि आप भी यहीं रहिए ।

महन्त : मैं तो इस नगर में अब एक क्षण भर नहीं रहूंगा । देख, मेरी बात मान नहीं पीछे पछतायगा । मैं तो जाता हूं, पर इतना कहे जाता हूं कि कभी संकट पड़े तो हमारा स्मरण करना ।

गो० दा० : प्रणाम गुरुजी, मैं आपका नित्य ही स्मरण करूंगा । मैं तो फिर भी कहता हूं कि आप भी यहीं रहिए ।

[महन्त जी नारायण दास के साथ जाते हैं, गोबर्धनदास बैठकर मिठाई खाता है ।]

[पटाक्षेप]

चौथा दृश्य

[राजसभा]

[राजा, मन्त्री और नौकर लोग यथास्थान स्थित हैं ।]

1सेवक : (चिल्ला कर) पान खाइए महाराज ।

राजा : (पीनक से चौंक के घबड़ाकर उठता है) क्या कहा ? सुपनखा आई ए महाराज ! (भागता है) ।

मन्त्री : (राजा का हाथ पकड़कर) नहीं-नहीं, यह कहता है कि पान खाइए महाराज ।

राजा : दुष्ट लुच्चा पाजी ! नाहक हमको डरा दिया। मन्त्री इसको सौ कोड़े लगैं।

मन्त्री : महाराज ! इसका क्या दोष है ! न तमोली पान लगा कर देता, न यह पुकारता।

राजा : अच्छा, तमोली को दो सौ कोड़े लगैं।

मन्त्री : पर महाराज, आप 'पान खाइए' सुनकर थोड़े ही डरे हैं, आप तो सुपनखा के नाम से डरे हैं, सुपनखा को सजा हो।

राजा : (घबड़ा कर) फिर वही नाम ? मन्त्री तुम बड़े खराब आदमी हो। हम रानी से कह देंगे कि मन्त्री बेर-बेर तुमको सौत बुलाने चाहता है। नौकर ! नौकर! शराब।

2 नौकर : **(एक सुराही में से एक गिलास में शराब उझल कर देता है)** लीजिए महाराज। पीजिए महाराज।

राजा : **(मुंह बनाकर पीता है)** और दे।

[नेपथ्य में—दुहाई है दुहाई—का शब्द होता है।]

राजा : कौन चिल्लाता है—पकड़ लाओ।

[दो नौकर एक फर्यादी को पकड़ लाते हैं]

फ० : दोहाई है महाराज दोहाई है ! हमारा न्याव होय।

राजा : चुप रहो। तुम्हारा न्याव यहां ऐसा होगा कि जैसा जम के यहां भी न होगा। बोलो क्या हुआ ?

फ० : महाराज ! कल्लू बनिया की दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उसके नीचे दब गई। दोहाई है महाराज ! न्याव हो।

राजा : **(नौकर से)** कल्लू बनिया की दीवार को अभी पकड़ लाओ।

मन्त्री : महाराज, दीवार नहीं लाई जा सकती।

राजा : अच्छा, उसका भाई, लड़का, दोस्त, आशना जो हो उसको पकड़ लाओ।

मन्त्री : महाराज ! दीवार ईंट-चूने की होती है, उसको भाई-बेटा नहीं होता।

राजा : अच्छा कल्लू बनिये को पकड़ लाओ। **(नौकर लोग दौड़कर बाहर से बनिए को पकड़ लाते हैं)** क्यों बे बनिए ! इसकी लरकी, नहीं बरकी क्यों दबकर मर गई।

मन्त्री : बरकी नहीं महाराज बकरी।

राजा : हां हां, बकरी क्यों मर गई—बोल, नहीं अभी फांसी देता हूं।

कल्लू : महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं। कारीगर ने ऐसी दीवार बनायी कि गिर पड़ी।

राजा : अच्छा, इस कल्लू को छोड़ दो, कारीगर को पकड़ लाओ। **(कल्लू जाता है, लोग कारीगर को पकड़ लाते हैं)** क्यों बे कारीगर ! इसकी बकरी किस तरह मर गई ?

कारीगर : महाराज, मेरा कुछ कसूर नहीं, चूने वाले ने ऐसा बोदा बनाया कि दीवार गिर पड़ी।

राजा : अच्छा, इस कारीगर को बुलाओ, नहीं-नहीं निकालो, उस चूने वाले को बुलाओ। **(कारीगर निकाला जाता है, चूने वाला पकड़कर लाया जाता है)** क्यों बे खैर सुपाड़ी चूने वाले ! इसकी कुबरी नहीं बकरी कैसे मर गई ?

चूने वाला : महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं। भिस्ती ने चूने में पानी ढेर कर दिया, इसी से चूना कमज़ोर हो गया होगा।

राजा : अच्छा, चुन्नी लाल को निकालो, भिश्ती को पकड़ो **(चूने वाला निकाला जाता है**

भिश्ती लाया जाता है) क्यों बे भिश्ती ! गंगा जमुना की किश्ती ! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई।

भिश्ती : महाराज ! गुलाम का कोई कसूर नहीं, कस्साई ने मसक इतनी बड़ी बना दिया कि उसमें पानी जादे आ गया।

राजा : अच्छा, कस्साई को लाओ, भिश्ती को निकालो।
(लोग भिश्ती को निकालते हैं और कस्साई को लाते हैं)
क्यों बे कस्साई, मशक ऐसी क्यों बनाई कि दीवार गिराई बकरी दबाई ?

कस्साई : महाराज ! गड़रिया ने टके पर ऐसी बड़ी भेड़ मेरे हाथ बेची कि उसकी मशक बड़ी बन गई।

राजा : अच्छा कस्साई को निकालो, गड़ेरिये को लाओ।
(कस्साई निकाला जाता है, गड़रिया आता है)
क्यों वे ऊखपौंड़ के गड़रिया। ऐसी बड़ी भेड़ क्यों बेची कि बकरी मर गई ?

गड़ेरिया : महाराज ! उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई, तो उसके देखने में मैंने छोटी बड़ी भेड़ का ख्याल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं।

राजा : अच्छा, इसको निकालो, कोतवाल को अभी सरबमुहर पकड़ लाओ। **(गड़रिया निकाला जाता है कोतवाल पकड़ा जाता है)**
क्यों बे कोतवाल ! तैंने सवारी ऐसी धूम से क्यों निकाली कि गड़ेरिये ने घबड़ा कर बड़ी भेड़ बेची, जिससे बकरी गिरकर कल्लू बनिया दब गया ?

कोतवाल : महाराज महाराज ! मैंने तो कोई कसूर नहीं किया, मैं तो शहर के इन्तजाम के वास्ते जाता था।

मंत्री : (आप ही आप) यह तो बड़ा गजब हुआ, ऐसा न हो कि बेवकूफ इस बात पर सारे नगर को फूंक दे या फांसी दे। **(कोतवाल से)** यह नहीं, तुमने ऐसी धूम से सवारी क्यों निकाली ?

राजा : हां हां, यह नहीं, तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाली कि उसकी बकरी दबी।

कोतवाल : महाराज महाराज—

राजा : कुछ नहीं, महाराज महाराज। ले जाओ, कोतवाल को अभी फांसी दो। दरबार बरखास्त।
(लोग एक तरफ से कोतवाल को पकड़ कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मंत्री को पकड़ कर राजा जाते हैं)

[पटापेक्ष]

पांचवां दृश्य

[अरण्य]

[गोवर्धनदास गाते हुए आते हैं।]

(राग काफ़ी)

अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा ।।
नीच-ऊंच सब एकहि ऐसे। जैसे भड़ुए पंडित तैसे ।।

कुल मरजाद न मान बढ़ाई । सबै एक से लोग लुगाई ॥
जात-पांत पूछे नहिं कोई । हरि को भजे सो हरि को होई ॥
बैश्या जोरू एक समाना । बकरी गऊ एक करि जाना ॥
सांचे मारे मारे डोलैं । छली दुष्ट सिर चढ़ि चढ़ि बोलैं ॥
प्रगट सभ्य अन्तर छलधारी । सोई राजसभा बलभारी ॥
सांच कहैं ते पनही खावैं । झूठे बहुविधि पदवी पावैं ॥
छलियन के एका के आगे । लाख कहौ एकहु नहिं लागै ॥
भीतर होइ मलिन की कारो । चहिए बाहर रंग चटकारो ॥
धर्म अधर्म एक दरसाई । राजा करै सो न्याव सदाई ॥
भीतर स्वाहा बाहर सादे । राज करहिं अमले अरु प्यादे ॥
अंधाधुन्ध मच्यौ सब देसा । मानहुं राजा रहत बिदेसा ॥
गो द्विज श्रुति आदर नहि होई । मानहुं नृपति बिधर्म्मी कोई ॥
ऊंच नीच सब एकहि सारा । मानहु ब्रह्म ज्ञान बिस्तारा ॥
अंधेर नगरी अनबूझ राजा । टका सेर भाजी टका सेर खाजा ॥

[बैठकर मिठाई खाता है]

गुरुजी ने हमको नाहक यहां रहने को मना किया था। माना कि देस बहुत बुरा है। पर अपना क्या ? अपने किसी राजकाज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, रोज मिठाई चाभना, मजे में आनन्द से राम-भजन करना ।

[मिठाई खाता है]

[चार प्यादे चार ओर से आकर उसको पकड़ लेते हैं]

1 प्या० : चल बे चल, बहुत मिठाई खाकर मुटाया है। आज पूरी हो गई।

2 प्या० : बाबा जी चलिए, नमोनारायण कीजिए।

गो० दा० : (घबड़ाकर) हैं ! यह आफत कहां से आई ! अरे भाई, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो मुझको पकड़ते हो ?

1 प्या० : आपने बिगाड़ा है या बनाया है इससे क्या मतलब, अब चलिए । फांसी चढ़िए ।

गो० दा० : फांसी ! अरे बाप रे बाप फांसी !! मैंने किसकी जमा लूटी है कि मुझको फांसी ! मैंने किसके प्राण मारे कि मुझको फांसी !

2 प्या० : आप बड़े मोटे हैं, इस वास्ते फांसी होती है ।

गो० दा० : मोटे होने से फांसी ? यह कहां का न्याय है ! अरे, हंसी फकीरों से नहीं करनी होती।

1 प्या० : जब सूली चढ़ लीजिएगा तब मालूम होगा कि हंसी है कि सच । सीधी राह से चलते हो कि घसीट कर ले चलें ?

गो० दा० : अरे बाबा, क्यों बेकसूर का प्राण मारते हो ? भगवान के यहां क्या जवाब दोगे ?

1 प्या० : भगवान को जवाब राजा देगा। हमको क्या मतलब । हम तो हुक्मी बन्दे हैं।

गो० दा० : तब भी बाबा बात क्या है कि हम फकीर आदमी को नाहक फांसी देते हो ?

1 प्या० : बात है कि कल कोतवाल को फांसी का हुकुम हुआ था। जब फांसी देने को उसको ले गए, तो फांसी का फन्दा बड़ा हुआ, क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं। हम लोगों ने महाराज से अर्ज किया, इस पर हुक्म हुआ कि एक मोटा आदमी पकड़कर फांसी

दे दो, क्योंकि बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी को सजा होनी ज़रूर है, नहीं तो न्याव न होगा। इसी वास्ते तुमको ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुमको फांसी दें।

गो० दा० : तो क्या और कोई मोटा आदमी इस नगर भर में नहीं मिलता जो मुझ अनाथ फकीर को फाँसी देते हैं।

1 प्या० : इसमें दो बात हैं—एक तो नगर भर में राजा के न्याव के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे और किसी को पकड़ें तो वह न जानें क्या बात बनावै कि हमी लोगों के सिर कहीं न घहराय और फिर इस राज में साधू-महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है, इससे तुम्हीं को फांसी देंगे।

गो० दा० : दुहाई परमेश्वर की, अरे मैं नाहक मारा जाता हूं ! अरे यहां बड़ा ही अंधेर है, अरे गुरुजी महाराज का कहा मैंने न माना उसका फल मुझको भोगना पड़ा। गुरुजी कहां हौ ! आओ, मेरे प्राण बचाओ, अरे मैं बे अपराध मारा जाता हूं। गुरुजी गुरुजी—

[गोवर्धनदास चिल्लाता है, प्यादे लोग उसको पकड़ कर ले जाते हैं]

(पटाक्षेप)

छठा दृश्य

[स्थान श्मशान]

[गोवर्धनदास को पकड़े हुए चार सिपाहियों का प्रवेश]

गो० दा० : हाय बाप रे ! मुझे बेकसूर ही फांसी देते हैं। अरे भाइयो, कुछ तो धर्म विचारो ! अरे मुझ गरीब को फांसी देकर तुम लोगों को क्या लाभ होगा ? अरे मुझे छोड़ दो। हाय ! हाय !

[रोता है और छुड़ाने की कोशिश करता है।]

1 सिपाही : अबे, चुप रह—राजा का हुकुम भला कहीं टल सकता है ? यह तेरा आखिरी दम है, राम का नाम ले—बेफाइदा क्यों शोर करता है ? चुप रह—

गो० दा० : हाय ! मैंने गुरुजी का कहना न माना, उसी का यह फल है। गुरुजी ने कहा था कि ऐसे नगर में न रहना चाहिए, यह मैंने न सुना ! अरे ! इस नगर का नाम ही अंधेर नगरी और राजा का नाम चौपट्ट है, तब बचने की कौन आशा है। अरे ! इस नगर में ऐसा कोई धर्मात्मा नहीं है जो इस फकीर को बचावै। गुरुजी ! कहां हौ ? बचाओ—गुरुजी—गुरुजी !

[रोता है, सिपाही लोग उसे घसीटते हुए ले चलते हैं]

[गुरुजी और नारायण दास आते हैं]

गुरु० : अरे बच्चा गोबर्धन दास ! तेरी यह क्या दशा है ?

गो० दा० : (गुरु को हाथ जोड़कर) गुरुजी ! दीवार के नीचे बकरी दब गई, सो इसके लिए मुझे फांसी देते हैं, गुरुजी बचाओ !

गुरु० : अरे बच्चा ! मैंने तो पहिले ही कहा था कि ऐसे नगर में रहना ठीक नहीं; तैंने मेरा

कहना नहीं सुना।

गो० दा० : मैंने आपका कहा नहीं माना, उसी का यह फल मिला। आपके सिवा अब ऐसा कोई नहीं है जो रक्षा करे। मैं आप ही का हूं, आपके सिवा और कोई नहीं (**पैर पकड़कर रोता है**)।

महन्त : कोई चिन्ता नहीं, नारायण सब समर्थ है। (**भौं चढ़ाकर सिपाहियों से**) सुनो, मुझको अपने शिष्य को अंतिम उपदेश देने दो, तुम लोग तनिक किनारे हो जाओ, देखो मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हारा भला न होगा।

सिपाही : नहीं महाराज, हम लोग हट जाते हैं। आप बेशक उपदेश कीजिए।

[सिपाही हट जाते हैं। गुरुजी चेले के कान में कुछ समझाते हैं]

गो० दा० : (**प्रगट**) तब तो गुरुजी हम अभी फांसी पर चढ़ेंगे।

महन्त : नहीं बच्चा मुझको चढ़ने दे।

गो० दा० : नहीं गुरुजी, हम फांसी चढ़ेंग।

महन्त : नहीं बच्चा हम। इतना समझाया नहीं मानता, हम बूढ़े भए, हमको जाने दे।

गो० दा० : स्वर्ग जाने में बूढ़े-जवान क्या? आप तो सिद्ध हो, आपको गति अगति से क्या? मैं फांसी चढ़ूंगा।

[इसी प्रकार दोनों हुज्जत करते हैं—सिपाही लोग परस्पर चकित होते हैं।

1 सिपाही : भाई! यह क्या माजरा है, कुछ समझ नहीं पड़ता।

2 सिपाही : हम भी नहीं समझ सकते कि यह कैसा गबड़ा है।

[राजा, मंत्री, कोतवाल आते हैं)

राजा : यह क्या गोलमाल है?

1 सिपाही : महाराज! चेला कहता है मैं फांसी पड़ूंगा, गुरु कहता है मैं पड़ूंगा; कुछ मालूम नहीं पड़ता कि क्या बात है?

राजा : (गुरु से) बाबा जी! बोलो। काहे को आप फांसी चढ़ते हैं?

महन्त : राजा! इस समय ऐसा साइत है कि जो मरेगा सीधा बैकुंठ जाएगा।

मंत्री : तब तो हमीं फांसी चढ़ेंगे।

गो० दा० : हम हम। हमको तो हुकुम है।

कोतवाल : हम लटकेंगे। हमारे सबब तो दीवार गिरी।

राजा : चुप रहो, सब लोग, राजा के आछत और कौन बैकुण्ठ जा सकता है? हमको फांसी चढ़ाओ, जल्दी, जल्दी।

महन्त : जहां न धर्म्म न बुद्धि नहिं, नीति न सुजन समाज।
ते ऐसेहि आपुहि नसे, जैसे चौपट राज॥

[राजा को लोग टिकठी पर खड़ा करते हैं]

(पटाक्षेप)

भारत दुर्दशा

रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा, भारत दुर्दशा न देखी जाई।
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीन्हो।
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो।
सबके पहिले जेहि विद्याफल गहि लीनो।
अब सब के पीछे सोई परत लखाई।
हा हा, भारत दुर्दशा न देखी जाई।
जहं भये शाक्य हरिचन्दरु नहुषययाती।
जहं राम युधिष्ठिर बासुदेव सर्याती।
जहं भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहं रही मूढ़ता कलह अविद्या राती।
अब जहं देखहु दुःखहि दुःख दिखाई।
हा हा, भारत दुर्दशा न देखी जाई।
लरि बैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी।
करि कलह बुलाई जवन सैन पुनि भारी।
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहु वारी।
छाई अब आलस कुमति कलह अंधियारी।
भये अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई।
हा हा, भारत दुर्दशा न देखी जाई।
अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।
ताहू पै मंहगी काल रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा, भारत दुर्दशा न देखी जाई।

हरी हुई सब भूमि

बरषा सिर पर आ गयी हरी हुई सब भूमि,
बागों में झूले पड़े, रहे भ्रमण-गण झूमि।

करके याद कुटुम्ब की फिरे विदेशी लोग,
बिछड़े प्रीतमवासियों के सिर छाया सोग।
खोल-खोल छाता चले लोग सड़क के बीच,
कीचड़ में जूते फंसे जैसे अघ में नीच।

नये जमाने की मुकरी

(1884 ई०)

(1)

सब गुरुजन को बुरो बतावै
अपनी खिचड़ी अलग पकावै,
भीतर तत्व न झूठी तेजी
क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेजी।

(2)

तीन बुलाए तेरह आवैं
निज निज बिपता रोइ सुनावैं,
आंखौ फूटे भरा न पेट
क्यों सखि सज्जन नहिं ग्रैजुएट।

(3)

रूप दिखावत सरबस लूटै
फंदे मैं जो पड़ै न छूटै,
कपट कटारी जिय में हूलिस
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पुलिस।

(4)

भीतर भीतर सब रस चूसै
हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै,
जाहिर बातन में अति तेज
क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज।

(5)

नई नई नित तान सुनावै
अपने जाल में जगत् फंसावै,
नित-नित हमैं करै बल-सून
क्यों सखि सज्जन नहीं क़ानून।

निबन्ध

जातीय-संगीत

भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े-बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किन्तु वे जनसाधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके हेतु मैंने यह सोचा है कि जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश, गांव-गांव, में साधारण लोगों में प्रचार की जाएं। यह सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना ग्रामगीत शीघ्र फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता। इससे साधारण लोगों के चित्त पर भी इन बातों का अंकुर जमाने को इस प्रकार से जो संगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ संस्कार बदल जाने की आशा है। इसी हेतु मेरी इच्छा है कि मैं ऐसे-ऐसे गीतों को संग्रह करूं और उनको छोटी-छोटी पुस्तकों में मुद्रित करूं। इस विषय में मैं, जिनको जिनको कुछ भी रचनाशक्ति है, उनसे सहायता चाहता हूं कि वे लोग भी इस विषय पर गीत व छंद बनाकर स्वतंत्र प्रकाश करें या मेरे पास भेज दें, मैं उनको प्रकाश करूंगा और सब लोग अपनी मंडली में गाने वालों को यह पुस्तक दें। जो लोग धनिक हैं वह नियम करें कि जो गुणी इन गीतों को गावेगा उसी का वे लोग गाना सुनेंगे। स्त्रियों की भी ऐसे ही गीतों पर रुचि बढ़ाई जाए और उनको ऐसे गीतों के गाने का अभिनंदन किया जाए। ऐसी पुस्तकें या बिना मूल्य वितरण की जाएं या इनका मूल्य अति स्वल्प रखा जाए। जिन लोगों का ग्रामीणों से सम्बन्ध है वे गांव में ऐसी पुस्तकें भेज दें। जहां कहीं ऐसे गीत सुनें उनका अभिनन्दन करें। इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे-छोटे छंदों में और साधारण भाषा में बनें, वरंच गवांरी भाषाओं में और स्त्रियों की भाषा में विशेष हों। कजली ठुमरी, खेमटा, कंहरवा, अद्धा, चैती, होली, साँझी, लम्बे, लावनी, जांते के गीत, विरहा, चनैनी, ग़ज़ल इत्यादि ग्रामगीतों में इनका प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो, अर्थात् पंजाब में पंजाबी, बुन्देलखंड में बुन्देलखंडी, बिहार में बिहारी, ऐसे जिन देशों में जिन भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बनें। उत्साही लोग इसमें जो बनाने की शक्ति रखते हैं वे बनावें, जो छापने की शक्ति रखते हैं वे छपवा दें और जो प्रचार की शक्ति रखते हैं वे प्रचार करें। मुझसे जहां तक हो सकेगा मैं भी करूंगा। जो गीत मेरे पास आवेंगे उनको मैं यथाशक्ति प्रचार करूंगा। इससे सब लोगों से निवेदन है कि गीतादिक भेजकर मेरी इस विषय में सहायता करें और यह विषय प्रचार के योग्य है कि नहीं और इसका प्रचार सुलभ रीति से कैसे हो सकता है इस विषय में प्रकाश करके अनुगृहीत

करेंगे। मैंने ऐसी पुस्तकों के हेतु नीचे लिखे हुए विषय चुने हैं। इनमें और भी जिन विषयों की आवश्यकता हो लिखें। ऐसे गीतों में रोचक बातें जो स्त्रियों और गंवारों को अच्छी लगे होना चाहिए और श्रृंगार, हास्य आदि रस इसमें मिले रहें जिसमें इनका प्रचार सहज में हो जाए।

बाल्य विवाह—इसमें स्त्री का बालक पति होने का दुःख, फिर परस्पर मन न मिलने का वर्णन, उससे अनेक भावी अमंगल और अप्रीतिजनक परिणाम।

जन्म पत्री की विधि—इससे बिना मन मिले स्त्री पुरुष का विवाह और इसकी अशास्त्रता।

बालकों की शिक्षा—इसकी आवश्यकता, प्रणाली, शिष्टाचार शिक्षा, व्यवहार-शिक्षा आदि।

बालकों से बर्ताव—इसमें बालकों के योग्य रीति पर बर्ताव न करने में उनका नाश होना।

अंगरेजी फैशन—इससे बिगड़कर बालकों का मद्यादि सेवन और स्वधर्म विस्मरण।

स्वधर्मचिंता—इसकी आवश्यकता।

भ्रूणहत्या और शिशु हत्या—इसके प्रचार के कारण, उसके मिटाने के उपाय।

फूट और बैर—इसके दुर्गुण, इसके कारण भारत की क्या-क्या हानि हुई इसका वर्णन।

मैत्री और ऐक्य—इसके बढ़ाने के उपाय, इसके शुभ फल।

बहुजातित्व और बहुभक्तित्व—के दोष, इससे परस्पर चित्त का न मिलना, इसी से एक का दूसरे के सहाय में असमर्थ होना।

योग्यता—अर्थात् केवल वाणी का विस्तार न करके सब कामों के करने की योग्यता पहुंचाना और उदाहरण दिखलाने का विषय।

पूर्वज आर्यों की स्तुति—इसमें उनके शौर्य, औदार्य, सत्य, चातुर्य, विद्यादि गुणों का वर्णन।

जन्मभूमि—इससे स्नेह और इसके सुधारने की आवश्यकता का वर्णन।

आलस्य और संतोष—इनकी संसार के विषय में निंदा और इससे हानि।

व्यापार की उन्नति—इसकी आवश्यकता और उपाय।

नशा—इसकी निंदा इत्यादि।

अदालत—इसमें रुपया व्यय करके नाश होना और आपस में न समझने का परिणाम।

हिन्दुस्तान की वस्तु हिन्दुस्तानियों को व्यवहार करना—इसकी आवश्यकता, इसके गुण, इसके न होने से हानि का वर्णन।

भारतवर्ष के दुर्भाग्य का वर्णन—करुणा रस संवलित।

ऐसे ही और विषय जिनमें देश की उन्नति की संभावना हो लिए जायं। यद्यपि यह एक-एक विषय एक एक नाटक, उपन्यास व काव्य आदि के ग्रंथ बनाने के योग्य हैं और इन पर अलग ग्रंथ बनें तो बड़ी ही उत्तम बात है, पर यहां तो इन विषयों के छोटे-छोटे सरल देशभाषा में गीत और छंदों की आवश्यकता है जो पृथक पुस्तकाकार मुद्रित होकर साधारण जनों में फैलाए जाएंगे। मैं आशा करता हूं कि इस विषय की समालोचना करके और पत्रों के संपादक महोदयगण मेरी अवश्य सहायता करेंगे और उत्साही जन ऐसी पुस्तकों का प्रचार करेंगे। ○

गुलेरी साहित्य की मूल संवेदना

☐ डॉ० सत्यपाल शर्मा

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी कला की समीक्षा करने वाले कतिपय विद्वानों ने उनके लेखन की मूल संवेदना के विषय में कुछ ऐसे विचार प्रकट किए हैं जो कहानियों के विश्लेषण करने पर तर्कसंगत और युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होते। एक समीक्षक महाशय का कहना है कि गुलेरी जी की तीनों कहानियां (सुखमय जीवन, बुद्धू का कांटा और उसने कहा था) के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके मन-मस्तिष्क पर मांसल प्रेम बुरी तरह से हावी था, जिसकी निर्लज्ज प्रगल्भता इन कहानियों में बराबर मिलती है। अनाड़ी के सामने लहंगा पसारने न पसारने की समस्या ही उनके प्रेमदर्शन को उद्घाटित करती है।' यही समीक्षक एक अन्य स्थल पर कहते हैं कि गुलेरी जी की कहानियों की मूल संवेदना देह-धर्म के मांसल प्रेम की अभिव्यक्ति है। किसी आदर्श को थोपना लेखक को अभिप्रेत नहीं था, हां आलोचकों ने अपने-अपने चश्मे से देखते हुए अर्थ का अनर्थ करने का प्रयत्न अवश्य किया है।

समीक्षकों के चश्मे तो हमेशा भिन्न-भिन्न ही रहते हैं, परन्तु मूल मुद्दों पर विचार करते समय वे प्रायः अपने विवेक की अनदेखी करते हुए अर्थ का अनर्थ नहीं करते। गुलेरी जी की कहानियों में प्रेम का आदर्श भी है और देह धर्म की प्रतिष्ठा भी। देह को मनुष्य की दुनिया से एकदम खारिज तो किया नहीं जा सकता, अलबत्ता इसे मर्यादा में बांधकर सही मार्ग पर जरूर चलाया जा सकता है। देह धर्म को महत्त्वपूर्ण स्थान देकर गुलेरी जी ने कोई ग़लती नहीं की है। यही तो वह प्रत्यक्ष इन्द्रियगोचर धर्म है जो सृष्टि के विकास में सबसे अधिक भूमिका निभाता है। फिर कालिदास सरीखे उन महान रचनाकारों पर भी जरा नजर डालिए जो नर और नारी के बीच के दैनिक संबन्धों में कुछ भी छिपाने योग्य नहीं समझते। उनके गगनचारी सिद्ध दम्पति अपनी तीव्र दैहिक संवेदनाओं के वशीभूत होकर यदि आम्रकूट पर्वत को धरती रूपी युवती के उभरे हुए वक्षोज के रूप में देखते हैं तो गुलेरी जी के बीसवीं शताब्दी के पात्र अपने काम प्रेरित उद्‌गारों को प्रकट करते समय संकोच अनुभव न करते हुए कोई बुरा तो नहीं करते। कालिदास के प्रणयी अपनी प्रेयसियों के प्रकम्प भरे आलिंगनों को प्राप्त कर यदि गर्जना करते हुए बादलों का धन्यवाद करते हुए लज्जित नहीं होते तो 'बुद्धू का कांटा' कहानी की भागवन्ती अपनी कामचेष्टाओं पर लज्जा का अनुभव क्यों करे। जिस सहज भाव से कालिदास ने विवृतजघना का जिक्र किया है उसी सहज भाव से गुलेरी जी ने लहंगा पसारने की बात कही है। 'बुद्धू का कांटा' कहानी की भागवन्ती शरीर और मन दोनों से स्वस्थ और सुन्दर है। वर्जना

tharahkardu.in

विहीन ग्राम्य जीवन तथा लीलामयी उन्मुक्त प्रवृत्ति ने उसके पूर्ण नारीत्व का सृजन किया है अत: युवा रघुनाथ को सामने पाकर उसका काम विह्वल हो जाना बिल्कुल सहज और प्राकृतिक है। परन्तु यह सब होने पर भी उसने नारी सुलभ लज्जा और समाज सम्मत मर्यादा का उल्लंघन तो कहीं भी नहीं किया है। हां, शुरु-शुरु में उसने वाचालता ज़रूर दिखाई है, परन्तु इसका कारण उसकी निर्लज्ज काम भावना नहीं, बल्कि ग्राम्य जीवन की, शहरी संस्कार-परिष्कार से विहीन ग्राम्यता है।

लहंगा पसारने वाली बात भी सीधे-सादे ग्रामीण जनों की स्पष्टोक्ति के रूप में ही मानी जानी चाहिए। अश्लील-से-अश्लील और भद्दी-से-भद्दी बात को भी कलात्मक बारीकी से कहने का फ़न तो शहरी लोग ही जानते हैं। इस प्रकार की उक्तियों को उनके सही परिप्रेक्ष्य में न देखने वाले लोग ही वास्तव में अर्थ का अनर्थ करते हैं। फिर विवृतजघना रमणियों की उत्तेजक रूपमाधुरी का चित्रण करने वाले कालिदास और जल से भीगे बारीक वस्त्रों में से अपने अंगों के उभारों को प्रकट करने वाली तन्वङ्गियों का आलिंगन कर अपने को धन्य मानने वाले चारुदत्त रूपधारी शूद्रक यदि अश्लील नहीं हैं तो अपनी परिणीता प्रेयसी भागवन्ती को कमर से पकड़ने वाला गुलेरी जी का रघुनाथ इतना बुरा क्यों है। वेगवती नदी के चंचल लहरों वाले जल को पीता हुआ मेघ तो कालिदास को उस प्रणय विह्वल प्रेमी सा जान पड़ता है जो अपनी प्रिया के बांकी और वक्र भ्रुवों वाले मुख को बड़े चाव से पी रहा है, अत: 'सुखमय जीवन' कहानी का नायक जयदेवशरण यदि कमल का हाथ पकड़कर उससे प्रणय निवेदन करता है तो इसमें बुरा क्या है। शकुन्तला नाटक का दुष्यन्त यदि शकुन्तला रूपी फूल पर भ्रमर की तरह मंडरा सकता है तो जयदेवशरण का अपने आप को कमला का भ्रमर कह देना क्या बुरा है। इस सम्बन्ध में हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि गुलेरी जी संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे और संस्कृत रचनाकारों का कला-शिल्प उन्हें एक सहज उत्तराधिकार की तरह प्राप्त था। वह संस्कृत काव्य-नाटकों में पाए जाने वाले वर्जनामुक्त और उदार जीवन को स्वस्थ सुन्दर और आदर्श मानते थे। यही कारण है कि युवजनों की कामचेष्टाओं के स्पष्ट चित्रण में उन्होंने कोई संकोच अनुभव नहीं किया।

गुलेरी जी की कहानियों की मूल संवेदना वास्तव में मांसल प्रेम न होकर मानवीय सृष्टि में पाई जाने वाली जिजीविषा है। जीने की प्रबल इच्छा रखने वाला मनुष्य जीवन को आधे-अधूरे मन से नहीं पूर्ण गति और आवेग से जीना चाहता है। 'सुखमय जीवन' कहानी का जयदेवशरण और 'बुद्धू का कांटा' कहानी की भागवन्ती ये दोनों जिजीविषा सम्पन्न हैं। इनमें भी भागवन्ती की चेष्टाएं अधिक सहज और स्वस्थ हैं। गुलेरी जी द्वारा निर्मित यह नारी मानवीय स्पंदनों और आन्तरिक ऊर्जा के आवेगों से युक्त है। गुलेरी जी वस्तुत: काम-भावना को सतरंगी पर्दों से ढक कर संकोच और लाजपूर्वक थोड़ा-थोड़ा प्रकट करना और उसके इर्द-गिर्द सपनों का मायाजाल बुनना उचित नहीं समझते। इसलिए वह इसे या तो उच्छल तरंगों वाली नदी की चंचल रवानी के रूप में, या फिर मौन की भाषा में अभिव्यक्ति देते हैं। गांव के प्राकृतिक जीवन का ईमानदारी से चित्रण करने वाला कोई भी लेखक यही रास्ता अपनाएगा। अपनी कहानी 'बुद्धू का कांटा' में गुलेरी जी ने गांव में पाए जाने वाले, स्त्री-पुरुषों के बीच के सम्बन्धों की सरलता और निश्छलता का स्पष्ट वर्णन किया है। वह कहता है—'गांवों में पर्दा नहीं होता। वहां सब पुरुष सब स्त्रियों से और सब स्त्रियां सब पुरुषों से निडर होकर बातें कर

लेती हैं और शहरों के लम्बे घुंघटों के नीचे जो पाप होता है उसका दसवां हिस्सा भी गांव में नहीं होता।' वास्तव में गांव के लोग चूंकि बिना कुछ छिपाए सब कुछ स्पष्ट कह देते हैं, इसलिए भीतर-ही-भीतर सुलगती रहने वाली कोई चीज उनके पास नहीं होती। 'बुद्धू का कांटा' कहानी की भागवन्ती अपने तीखे, तिक्त और चुस्त शब्दों तथा कसमसाती कामोद्वेगमयी अंग-चेष्टाओं से यद्यपि एक वासना-विद्ध व्यक्तित्व की झलक देती है, परन्तु यह भी बिल्कुल स्पष्ट है कि कुछ भी लुकाने-छिपाने की आदत न होने के कारण ही उसका यह बाह्य रूप कुछ अधिक मुखर हुआ है।

भागवन्ती की चंचल चुहुलबाज़ी, आवेगमयी अंग चेष्टाएं और चुभन भरे वाक्य वासना की वीभत्सता न होकर स्वस्थ देह धर्म की अभिव्यक्ति हैं। रूढ़िवादी, वर्जनाग्रस्त और दक्यानूसी समाज को यदि इनमें वासना की गंध आती है तो इसमें दोष किसका है। कला-सृजन अथवा लेखन का कार्य न तो स्कूली पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर होता है और न एक वर्ग और एक समय विशेष से सम्बन्ध रखने वाले नैतिक प्रतिमानों को सामने रखकर होता है। पिछड़े हुए और पस्त हिम्मत समाज में रहते हुए भी गुलेरी जी ने जो भागवन्ती जैसे उन्मुक्त और जीवन्त पात्रों की सृष्टि की है, वह उनकी प्रगतिशीलता की ही द्योतक है। उन्होंने अपनी कहानियों में समाज की खोखली नैतिक मान्यताओं और चारित्रिक विसंगतियों पर भी खुलकर चोट की है। बारातों के खाना खाते समय गाए जाने वाले गाली-गीतों पर टिप्पणी करते हुए एक ग्राम-वृद्ध ने क्या सच्ची बात कही है—'हां साहब तरक्की हो रही है। पहले गालियों में कहा जाता था फ़लाने की फ़लानी के साथ और अमुक की अमुक के साथ। लोग लुगाई सुनते थे हंस देते थे। अब घर-घर में वे ही बात सच्ची हो रही हैं। अब गालियां गाई जातीं हैं तो चोरों की दाढ़ी में तिनके निकलते हैं। तभी तो आन्दोलन होते हैं कि गालियां बन्द करो, क्योंकि वे चुभती हैं।" (बुद्धू का कांटा)

कुछ समीक्षक कहते हैं कि गुलेरी जी ने रघुनाथ के रूप में एक नया ऋष्य-शृंग पैदा किया है। बात ठीक है, परन्तु उसे रिझाने तथा उसमें काम का अंकुर पैदा करने वाली भागवन्ती सौ प्रतिशत कुलीना है। काशी का एक निष्ठावान विद्यार्थी होने के नाते रघुनाथ 'काम' नाम वाले पुरुषार्थ से पूरी तरह अनभिज्ञ है। उसने जो इसका दमन कर रखा है वह बिल्कुल अप्राकृतिक है। काम के आवेगों से बिल्कुल अपरिचित और स्त्री के सान्निध्य से बचकर रहने वाले रघुनाथ जैसे बुद्धू नवयुवकों में पुरुषत्व जगा कर उन्हें पूर्ण बनाने वाली भागवन्तियां ही होतीं हैं। 'सुखमय जीवन' का कथानायक जयदेवशरण भी रगुनाथ से बहुत भिन्न नहीं है। प्रेम के प्रकटावे के लिए उसके पास शब्द ही नहीं हैं, तभी तो उसकी शब्दावली अटपटी सी हो जाती है। वह 'कामलोभी' और 'लम्पट' नहीं है। प्रथम प्रेम का दारुण दंश ही इस अनाड़ी की हरकतों को अटपटा बनाता है। वाग्विलास के धनी घुटे-घिसे शहरी नवयुवकों से वह बिल्कुल भिन्न एक सीधा-सादा नवयुवक है। कमला को देखकर जब वह अचानक ही बालक से युवा हो जाता है। तो अपने मन की अवस्था को प्रकट करने के लिए उसे शब्द नहीं मिलते। अंग्रेज़ी महाकाव्यों में प्रेममय उपन्यासों में और कोर्स के संस्कृत नाटकों में जहां-जहां प्रेमिका-प्रेमिक का वार्तालाप पढ़ा था, वहां-वहां का दृश्य स्मरण करके वहां-वहां के वाक्यों को वह घोख रहा था।

गुलेरी जी की कहानियों के पात्र प्रेम के पुतले तो हैं परन्तु कहानियों की मूल संवेदना

मानवीय संबन्धों की पावनता ही है। दैहिक प्रेम अथवा नर-नारी यौन संबन्ध भी इस संवेदना का अंग हैं। धर्म और अर्थ के समान ही काम भी मनुष्य जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ है। इसे छोटा करके देखना जीवन को नकारना है। पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी समाज हितैषी थे अतः उन्होंने काम के कुठिण्त रूप में नहीं सीधे-सच्चे रूप में रुचि दिखाई है। कुछ आलोचकों को मोर्चे की एक खन्दक में बैठे सैनिकों द्वारा गाए जाने वाले इस गीत में अभद्रता और अश्लीलता दिखाई देती है—

'दिल्ली शहर ते पिशौर नूं जांदिए,
कर लैणा लौंगा दा वपार मड़िए,
कर लैणा नाड़े दा सौदा अड़िए—
ओए लाणा चटाका कदुए नूं।

वे इसे लुच्चों का गीत कहकर आचार्य शुक्ल की उस कथित लापरवाही पर खीझते हैं जिसके कारण उन्होंने 'उसने कहा था' कहानी के इस अंश की अनदेखी करते हुए इसे श्रेष्ठता का प्रमाण-पत्र दे दिया है। समीक्षक जन शायद यह भूल रहे हैं कि मौत के मुंह में बैठा युद्धरत सैनिक जो गीत गाता है उसमें भद्रता-अभद्रता का विचार नहीं होता। यह गीत उसकी एक विशेष असामान्य मनोदशा का द्योतक होता है। युद्ध की असामान्य परिस्थितियों में योद्धाओं की वासना के असाधारण तौर पर बढ़ जाने की संभावना से भी कोई इन्कार नहीं कर सकता। वैसे युद्धरत सैनिक अपनी एकरसता को तोड़कर ताजा दम होने के लिए भी ऐसे गीत गाते हैं। वे अपना मनोबल बनाए रखने के लिए हर उस मनोरंजन का सहारा लेते हैं जो कुछ क्षणों के लिए भी युद्ध की विभीषिका से उनका ध्यान हटा देता है। गुलेरी जी के निबन्ध 'संस्कृत की टिपरारी' में यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। आॅयरलैण्ड वासी सैनिक प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में टिपरारी का प्रेमगीत गाकर अपना मन बहलाते थे। महाभारत के कर्णपर्व में भी कुछ ऐसी ही सामग्री मिलती है। कोई बाह्लीक वासी युवक अपने कुरुदेश के प्रवास के दौरान अपने प्यारे देश की याद कर भावविह्वल हो उठता है। वह अपने देश की युवतियों की दैहिक रुचिरता, मादक मांसलता, उन्मुक्त यौन दृष्टि और चंचल चितवनमयी उद्धत उच्छंता का वर्णन करता है। महाभारत के युद्ध शिविरों में रात के समय विश्राम रते हुए सैनिक बाह्लीक देश की नारियों की निर्लज्ज काम-चेष्टाओं का वर्णन करने वाले गीत जरूर गाते होंगे। 'उसने कहा था' कहानी में आए उक्त गीत में हमें लहंगा पसारने की बात नहीं युद्ध के परिप्रेक्ष्य में सैनिक की मानसिकता देखनी चाहिए।

प्रेम से सम्बन्ध रखने वाला एक और प्रश्न भी है। गुलेरी जी की कहानियों में चित्रित प्रेम की सात्विकता या स्वर्गिकता पर भी अंगुली उठाई गई है। गुलेरी जी की कहानियों का सहानुभूतिपूर्वक अध्ययन करने वाले कुछ समीक्षकों ने आठ वर्षीय बालिका और बारह वर्षीय बालक के बीच के बाल्यकाल के आकर्षण और बाद में इसके आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा देने वाले प्रेम के रूप में परिणत हो जाने को सात्विक प्रेम की संज्ञा दी है। कुछ विद्वान प्रश्न करते हैं कि क्या बालकों के बीच का स्नेह बीस-पच्चीस वर्ष बाद भी वैसा का वैसा ही बना हुआ था ? यदि पच्चीस वर्ष बाद भी दोनों में प्रेम की भावना थी···या मांसल आकर्षण बाकी था, तो क्या इसे सात्विक प्रेम कहना उचित होगा? उत्तर स्पष्ट है। प्रेम किसी पारिवारिक-सामाजिक वृत्त से घिर कर नहीं चलता। लहना सिंह के हृदय में यदि भूले-बिसरे समय की स्मृति ताज़ा हो जाती

है और उसका स्नेह भाव जाग उठता है तो इसमें कोई आपत्तिजनक बात नहीं। जहां समर्पण और आत्मोत्सर्ग की भावना ही मुख्य हो और जहां अपना सर्वस्व समर्पित कर देने का उछाह हो वहां आपत्ति की तो कोई गुंजाइश ही नहीं होनी चाहिए। प्रेम को किसी सहारे की जरूरत नहीं होती। संबंधों की मर्यादा इसे नहीं बांध सकती, यह अपने में शुद्ध और पवित्र ही होता है। अब रही बात छोटी अवस्था के प्रेमांकुरण की। तो इस संबंध में हम यही कहेंगे कि इस अवस्था के प्रेम के प्रमाणों की व्यावहारिक जीवन में कोई कमी नहीं है। इसमें यद्यपि न तो काम का ज्वार होता है और न भावों का तीव्र आवेग ही, परन्तु प्रकटत: अकारण ही एक-दूसरे को अच्छा लगना और हृदयों में एक मधुर आकर्षण का अनुभव होना कोई असंभावित बात नहीं।

इसके अतिरिक्त समीक्षकों ने कहानी से संबंधित और बड़ा महत्त्वपूर्ण मुद्दा उठाया है और वह यह है कि क्या लहनासिंह अब तक अविवाहित ही रहा होगा? यदि वह अविवाहित नहीं था तो अपनी जान देकर उसने अपने परिवार के प्रति अन्याय नहीं किया? इस संबंध में हम इतना ही कहना चाहेंगे कि लाभ-हानि, न्याय-अन्याय आदि बातें साहित्य के क्षेत्र में नहीं आतीं। जहां सच्चा प्रेम है वहां आत्मोत्सर्ग के मार्ग में कोई अन्य संबंध आड़े नहीं आ सकता। समर्पण में जहां संकोच हो वहां प्रेम माना ही नहीं जा सकता। फिर 'उसने कहा था' कहानी में केवल प्रेम ही नहीं है, दिए गए वचन के पालन का भद्रजनोचित दायित्व भी है। अमृतसर के एक बाज़ार में आठ वर्ष की लड़की और बारह वर्ष के लड़के के बीच जिस निकटता या प्रेम का विकास हुआ था उसे रोमांटिक प्रेम की अपेक्षा साहचर्यजन्य आत्मीयता समझना अधिक समीचीन है। इसमें मांसलता न पहले थी और न अब है। यह मात्र एक लगाव है या अपनेपन का एहसास है और जहां अपनत्व का यह एहसास प्रबल होता है वहां दूसरों के लिए किया गया कार्य अपने लिए किया गया ही प्रतीत होता है। अतः लहनासिंह के आत्मबलिदान को आत्म-हत्या की संज्ञा देना प्रेम का अपमान है। अपने बाल-बच्चों के लिए सब कुछ करता हुआ भी सैनिक लड़ता है और आवश्यकता पड़ने पर प्राणों की आहुति भी देता है।

गुलेरी जी के लेखन की मूल संवेदना मांमल प्रेम न होकर मानवीय करुणा है। प्रेम ने लहनासिंह में जो मनुष्यता जगाई है वही उसे त्याग और बलिदान की प्रेरणा देती है। वह सूबेदार हज़ारा सिंह और उसके पुत्र बोधासिंह का ध्यान इसलिए नहीं रखता कि उसे बचपन में किसी अबोध बालिका से प्राप्त हुए प्यार का मोल चुकाना है या पच्चीस वर्ष बाद की सूबेदारनी पर कोई एहसान करना है। वह तो अपने हृदय के किसी कोमल और पवित्र भाव के माध्यम से ही इन दोनों व्यक्तियों के साथ जुड़ता है और उसके हृदय में प्रवाहित होने वाली करुणा की वेगमयी धारा उसे बहाकर वहां ला खड़ा करती है जहां उसे एक महान उद्देश्य के लिए अपनी क्षुद्रसत्ता का लय करना ही है। मनुष्य पर हमेशा वैयक्तिक स्वार्थ ही हावी नहीं रहता। उसमें सामाजिक दायित्व बोध भी होता है। वचन का पालन अथवा व्रत का निर्वाह और वह भी युद्ध के मोर्चे पर बैठे हुए, भावुक योद्धा के लिए बहुत ही स्वाभाविक लगता है। इसे अपने परिवार के प्रति गद्दारी या भावुकतापूर्ण मूर्खता समझने वाले लोग मनुष्य के मन को समझने में पूरी तरह असमर्थ लगते हैं। फिर बीसवीं सदी के दूसरे दशक का भारतीय समाज आज के आत्मकेन्द्रित समाज की तरह स्वार्थी और भावना विहीन नहीं था। अपनी कहानी 'बुद्धू का कांटा' में भी गुलेरी जी ने इसी अन्तर्धारा का दर्शन कराया है। भागवन्ती की तेज-

तर्रार व्यंग्यमयी बोली-ठोली तथा नाना प्रकार के ताने-तिशने वास्तव में प्रणय की उस सुकोमल अन्तर्धारा का बाह्य आवरण है जो उस समय खुलता है जब रघुनाथ अपने होस्टल में बेचैन हो उठता है और भागवन्ती घर में मौन रहती हुई विछोह की मर्मान्तक वेदना सहती रहती है। होली पर रघुनाथ घर आता है। भागवन्ती से उसका मिलन होता है। यहां पर गुलेरी जी ने जो दृश्य खींचा है वह उनकी मांसल प्रेम की संवेदना का प्रतिफल न होकर एक सहज मानवीय अनुभूति का यथार्थ चित्र है। देखिए—'रघुनाथ ने एक हाथ उसकी कमर पर डालकर उसे अपनी ओर खींचना चाहा। मालूम पड़ा कि नदी के किनारे का किला, नीव के गल जाने से, धीरे-धीरे धंस रहा है। भागवन्ती का बलवान शरीर निःसार होकर रघुनाथ के कंधे पर झूल गया।'

बुद्धू का कांटा कहानी में आया इलाही का प्रसङ्ग यद्यपि कहानीकार के रूप में गुलेरी जी की निरंकुशता का संकेत देता है और मुख्य कथा में पूरी तरह फिट नहीं बैठता फिर भी यह इस दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है ही कि इससे हमें उस करुणा धारा की एक झलक मिलती है जो गुलेरी जी के अंतर्मन में निरन्तर प्रवाहित हो रही है। इलाही निर्धन और निढाल जीवन जीने वाला ऐसा शोषित इन्सान है जिसे न तो प्रशासन की ओर से कोई सहायता मिलती है और न न्याय व्यवस्था का ही सहारा प्राप्त होता है। एक विधर्मी मनुष्य जब उसे हज के लिए टिकट लेकर देता है तो उसके जीवन की एक बड़ी साध पूरी होती है। यहां गुलेरी जी ने साम्प्रदायिक भिन्नताओं में अभिन्नता स्थापित करने वाली मानवीयता का दर्शन कराया है। गुलेरी जी का लेखकीय व्यक्तित्व मनुष्य के यथार्थ स्वरूप और उसके जीवन की यथार्थ परिस्थितियों से पोषण पाता है। वह किताबी दुनिया की अपेक्षा जीते-जागते हंसते-गाते, और रोते-बिसूरते मनुष्यों की दुनिया में अधिक रमता है। इलाही के प्रसंग में की गई गुलेरी जी की टिप्पणी इसका प्रमाण है। वह लिखते हैं—'जब धूप चढ़ी और जी न लगा तो मोती के स्वामी इलाही से रघुनाथ ने उसका इतिहास पूछा। उसने जो सीधी और विश्वास से भरी दुःख की धाराओं से भीगी हुई कथा कही, उससे कुछ मार्ग कट गया। कितने ग़रीबों का इतिहास ऐसी चित्र घटनाओं की धूप-छाया से भरा हुआ है। पर हम लोग प्रकृति के इन सच्चे चित्रों को न देखकर उपन्यासों की मृगतृष्णा में चमत्कार ढूंढ़ते हैं।' गुलेरी जी ने अपने इस आदर्श को व्यावहारिक रूप देने के लिए अपनी तीनों कहानियों में वस्तुतत्व को यथार्थ जीवन के अधिक से अधिक निकट लाने का प्रयत्न किया है और इस प्रकार अपनी लेखकीय संवेदना के विषय में किसी प्रकार के शब्द की गुंजाइश नहीं रहने दी है।

[179-श्यामनगर, धर्मशाला (हि० प्र०)]

उसका खुदा

□ अरुण भारती

हैदर-हैदर—न जाने कहां होगा ? किस हाल में होगा ? होगा भी, या नहीं !

कई बार आंखों के आगे आ जाता है उसका अक्स । काला कलूटा चेहरा जिस्म पर झूलते चिथड़े, उनसे उठती गोबर की गंध । मैली बदरंग सी टोपी—गोल, जो शायद सफेद पापलीन के कपड़े की बनी होगी ! दरम्याना-सा कद, नंगे पांव, जिनके पंजे फैले-फैले से । एड़ियों की बिवाइयों में जमा सड़ा गोबर । उमर वक़्त से पहले ही ढलती-सी ।

मक्की या गेहूं के अंकुराते ही गांव में प्रकट हो जाता था हैदर ।

"पैरी पौणा परधान जी—पैरी पौणा पधाणी जी । शेज्जे (गोबर की खाद) दा ठेका दिखा किसी होर जो देंदे, बापू । हांऊ आपू सटी दिंगा ।"

देहरी पर झुकता-सा, कीच सनी आंखों में अपार दीनता का भाव लिए—याचक-सा खड़ा हो जाता हैदर ।

गांव-भर में वही गुबराई करता । बदले में जो मिल जाए ।

याद करना कठिन है—कब देखा था हैदर को ? अलबत्ता होश सम्भालते ही उसे देखा था । इसी रूप में—ढलती उम्र में । टोपी के नीचे कानों के आस-पास और बिना तराशी दाढ़ी में काले-सफेद बालों के गुच्छे गोबर सने । चेहरे की खाल पर उभरती मिटती झुरियां ।

दिन भर बैल की तरह जुटा रहता हैदर, गोबर ढोने में । किलटा पीठ पर लादे, कभी इस खेत को गोबर से भरता, कभी उस खेत को । सांझ ढले देहरी पर लौटता । थके जिस्म को लादता-सा । मां देहरी के बाहर ही उसे पटरे पर बिठा देती । हमें पानी का लोटा देकर उसके हाथ पांव धुलाने भेज दिया जाता इस ताकीद के साथ कि बर्तन उसके जिस्म से न छू जाए ।

हम अक्सर जान बूझ कर बर्तन उसे छुआ देते । वह बिदक कर खड़ा हो जाता ।

"पाधा जी क्या करा दे ? मेरी जात जाणदे ? हांऊ मुसलमान तां तुसां बाम्मण । आपणी जात खराब नी करदे । ल्याओ लोटा मुंजो देओ हांऊ धोई देंदा फेर तुसां धोई लेओ ।"

"क्यों—क्या हो गया है लोटे को ? हम नहीं देंगे ।"

"न बापू, इयां नी गलांदे । मैं आपणे खुदा जो क्या जबाब देणा ?"

"ये खुदा कौन है ? क्या पूछेगा तुमसे ?" हम कुछ न समझ कर उससे पूछते ।

"से तां उप्पर रैंदा—असमाने···।"

"आसमान में !" हम आसमान की तरफ देखते—टिमटिमाते तारों के सिवा एक गहरी काली चादर, कभी चांद। खुदा हमें न दिखा, जितनी बार भी उसने कहा कि खुदा असमान में है और उसे दीख रहा है।

हार कर एक बार मां से पूछा तो एक सन्नाटेदार थप्पड़ के साथ ही मां ने बुरी तरह डांट दिया।

"खबर दार, जो अपनी जुबान उसका नाम (खुदा का) लेकर गंदी की। अपणे भगवान का नाम नईं ले सकता ?"

डांट खाकर हम चुप हो गए। लेकिन हमारी समझ में यह सब कुछ नहीं आया कि आखिर नाम लेने से जुबान गंदी कैसे हो जाती है और यह भगवान क्या चीज़ है ? जिसका नाम लेना चाहिए।

बापू सुबह नहा-धोकर धूपबत्ती करते। घर के एक कोने वाले कमरे में, जो दिन-भर बंद ही रहता। सिर्फ सुबह शाम धूपबत्ती करने के लिए खुलता। यह ठाकुरद्वारा था। उसमें मूर्तियां थीं। छोटी बड़ी किताबें। गंगाजल की पीपी। चंदन वगैर। हमें भी नहा-धोकर उस कमरे में जाना पड़ता। धूप जलाकर सिर नवाना पड़ता। माथे पर घिसे चंदन का टीका करवाना पड़ता। गोमूत्र और गंगाजल के छींटे जिस्म पर डाल देती मां, मोर पंख से। पूजा खत्म और फिर, खाने-पीने, खेलने की आज़ादी।

बहुत दिनों तक मन में उथल-पुथल मची रही तो एक दिन हैदर को रोक लिया।

"कहां रहता है तुम्हारा खुदा ?"

"असमाने रैंदा।"

"भगवान क्या होता है ?"

"पता नईं। से तां तुसां जाणो पाधा जी।"

"तुम क्यों नहीं जानते ?"

"हांऊ तां मुसलमान ए। मुंजो क्या पता- पाधा ? आपणे बापू ते पूच्छी लओ ?"

लेकिन बापू से मैं आज तक पूछ नहीं पाया।

समय मिलते ही हैदर हमारी टोली में शमिल हो जाता। बच्चों के साथ खेलने में उसे बड़ा आनन्द आता। उतना ही हमें उसकी बोलियां सुनकर। लगभग हर जानवर की बोली वह बोलता। उनकी तरह चल कर दिखाता। तरह-तरह के मुंह बनाता। हम उस पर कंकर फेंकते, वह कुत्ते की तरह कभी "क्यांऊ-क्यांऊ करता, कभी बंदर की तरह दांत दिखाता, बगलें खुजाता। हम खेल रहे होते, वह चुपके से आ जाता। अचानक, 'भौं-भौं' करता, कभी कमर गुदगुदा देता कभी पसलियां। हम चौंक जाते। मां देख लेती तो गोमूत्र और गंगाजल छिड़कने के बाद ही अन्दर आने देती।

काम उसे मिल ही जाता। फसल का काम साल में आठ महीने तो रहता ही है। किसी के यहां बंध कर तो वह काम करता नहीं था। सभी को उसकी ज़रूरत रहती ही थी। किसी को गुबराई के लिए, किसी को, गुड़ाई-निराई, बीजाई या गहाई के लिए। छुट-पुट वह सबका काम करता। फिर गांव से गायब। कभी-कभी तो काम अधूरा ही छोड़ चल देता।

"अम्मा बाल जाणा पधाणी जी, कोई कपड़ा लत्ता ऐ फटा पुराणा तां देई देओ।"

मां उसे पुराने कपड़े दे देती। अपने भी और बापू के भी।

"खुदा बरकत दे पधाणी जी।" वह आसमान की तरफ अपने दोनों हाथ उठा देता।

"बस-बस, रैंणे दे अपणे खुदा को। मुझे नईं चइये बरकत तेरे खुदा से।"

मां खुदा का नाम सुनते ही चिढ़ उठती। हैदर गठरी उठाकर चल देता। हर बरस ऐसा ही होता।

हैदर का गांव, सतलुत के उस पार था। एक बार उसी ने बताया था। घर में सिर्फ मां थी और दो अदद बकरियां। आधा खेत, जो मुश्किल से मन दो मन अनाज दे पाता। उसकी शादी नहीं हुई थी। किसी ने कभी बात भी नहीं की। मां को वह ऐसा बताता था, जब भी मां उससे उसके ब्याह का जिक्र करती। "मुंजो कुणी देशी आपणी कुड़ी। भूखी मरने भला आणी बी कुण।" वह हंसकर कहता, कान के बीच फंसे बीड़ी के टुकड़े को निकालकर उसका कोना तोड़ने लग जाता।

मक्की अंकुरा रही थी। इस बार हैदर बदले हुए रूप में गांव में दाखिल हुआ। पहली मुठभेड़ हमसे ही हुई। हम खेल रहे थे। अचानक दीपू की नज़र उस पर पड़ी। वह हमारे बिलकुल पीछे खड़ा था। उसकी देह पर धुले कपड़े थे। पांव में टूटा-सा चमरौंधा। दाढ़ी तराशी हुई। अलबत्ता टोपी वही।

"अरे हैदर···? कब आया तू? और···ये···?" दीपू उसे सिर से पांव तक घूरते हुए बोला।

हैदर दोनों हाथ मुंह पर ले जाकर घुग्घी की आवाज निकालने लगा। फिर इधर-उधर नाचने लगा। नाचते-नाचते वह पगडंडी पर आगे बढ़ने लगा। हम पीछे थे। उसके काले कलूटे चेहरे पर अथाह चमक थी। जिस्म में फुर्ती।

गांव पहुंचते ही वह सबसे पहले हमारे घर गया।

पैरी पौणा पधाणी जी।"

"अरे—हैदर—तू? बड़ा बण-ठण कर आया? बैठ-बैठ। मैं चा' बणाती हूं।"

मां ने आंगन में पटरा डाल दिया। हम लोग घेरा-सा बना कर उसके इर्दगिर्द बैठ गए। हैदर जानवरों की नकलें उतारने में जुट गया।

पीतल के एक गिलास में मां चाय लाई और उसके आगे धर दी।

"कब आया तू?"

"हुणी आवादा पधाणी जी।"

"बड़ा बण-ठण कर आया अबकी। क्या बात ए?"

"बस पधाणी जी, क्या बोलूं?" हैदर के चेहरे पर एक रंग आ रहा था, दूसरा जा रहा था। मां से वह नजर नहीं मिला पा रहा था।

"है तो है कोई बात?"

"पधाणी जी, आगले चांद जो ब्या' ए मेरा।"

"क्या? तेरा ब्याह?" मां भौंचक-सी उसका मुंह ताकती रह गई। हमने घेरा कुछ और तंग कर दिया।"

"पधाणी जी, एक बेवा कने होवादा ब्याह मेरा ।"

"बेवा के साथ ?"

"दो मुंडु भी हन । इक दस की साले दा, एक आठ की साले दा ।"

"किसने किया तेरा रिश्ता ?" मां ने उसकी बात लगभग अनसुणी ही कर दी ।

"असां दे गराएं मौलवी जी रैंदे । तिना अम्मा जो समझाया—।" हैदर कुछ और कहना चाहता था लेकिन मां ने बीच में ही टोक दिया ।

"है कौण वो बेवा जो तू ला रा है ?"

"सेई तो दसादा । अम्मा दे रिश्ते दी ए । मतलब मेरे मामे दे मुंडुए दी घरोली ।"

"वो जो पिछले साल दरया में डूब गया था ?"

"हां—हुण समझे तुसां ।"

"चल अड़या, ठीक ई हुआ । उसको भी आसरा हो जाएगा तेरा, तेरी मां को बी । पर ए बता अबकी तू खेत का काम करेगा बी कि नईं ?"

"हं-हं-हं—इसा बारी तां मैं कम्मे पर नईं आई सकदा । अगले चांदे जो तां ब्या' ए मेरा ।"

"तो, जब तू कमाएगा नईं तो ब्या कैसे करेगा ?"

"मैं अपणा खेत रैं'न रखी दिता चच्चे वाल ।"

"अच्छा तो ये बात ए । तू हमको ब्या' में बुलाणे आया ए ।"

"कैं मज़ाक कर दे पधाणी जी । हांऊ तां कुछ फटे पुराणे कपड़े लैणे आया । मुंजो पता ए तुसां ज़रूर मेरी मदद करगे ।" हैदर कान के ऊपर फंसे बीड़ी के टोटे को निकालकर उसका कोना तोड़ने लग पड़ा ।

"तो मुआ, जोरू को बी पुराणे ई कपड़े पन्हाएगा ?" मां ने हंसते हुए कहा । हैदर भी हंसने लगा । हम चुपचाप उसका चेहरा देखने लगे ।

मां उठकर भीतर गई तो हम हैदर को छेड़ने लग गए ।

"तेरा ब्या ए ?" दीपू ने बड़ी संजीदगी से उससे पूछा ।

"हां ठाकरा ।"

"तेरे ब्या' में तेरा खुदा बी आएगा ?" हमने इधर-उधर देखकर बड़े ही आहिस्ता उससे पूछा ।

"पाधा, खुदा तां सारेयां दे ब्याए च आंवदा । मेरे ब्याए च कैंनी आणा ?"

"घोड़े पर चढ़कर आएगा ?"

"नईं, कतावे च बंद ओई ने ।" हंसते हुए उसने समझाना चाहा ।

"किताब में बंद होकर ?" हम कुछ समझने के लिए उससे और पूछते तब तक मां एक बड़ा गठ्ठर लिए आ पहुंची ।

"ए, ले । इसमें नए कपड़े बी हैं । कुछ बच्चों के बी । और ए ले पांच रुपै । अपणी जोरू को देणा मेरी तरफ से ।"

"खुदा सलामत रखे पधाणी जी, बरकत दे ।" हैदर के हाथ ऊपर उठ गए । गला भर्रा गया ।

"कितणी बार कहा तेरे को मेरे सामणे अपणे खुदा का नाम न लिया कर। हां, जब आएगा तो अपणी जोरू को बी ले आइयो।"

"जरूर, पधाणी जी, अच्छा पैरी पौणा।"

हैदर उसी दिन चला गया वापिस, दो चार घरों के दरवाजों पर दस्तक देकर।

उस बरस जम कर बरसात हुई। बादल फटने और अतिवृष्टि के कारण कई मकान तबाह हो गए, फसलें जमीन में बिछ गईं। छोटे-छोटे बरसाती नालें अपने साथ बहा ले गए खेत-खलिहान। पहाड़ियों पर से चट्टानें, जो सदियों से टिकी थीं, खिसक कर नालों में गिर पड़ीं। बड़े-बड़े दरख्त, जो सदियों से खड़े थे, गीली जमीन में अपने पांव जमाकर नहीं रख पाए। हम लोग भी नहीं जा पाते मूसलाधार बारिश में। आसमान में काले बादल अठखेलियां किया करते। जब भी आसमान को देखते, हैदर का खुदा याद आ जाता।

"कहां रहता होगा वह, अब ? इन बादलों ने तो उसे भगा दिया होगा ? शायद वह अभी भी हैदर के यहां ही हो ! ब्याह में तो वह जरूर आया होगा। अच्छा ही है, अगर वह वहां हो।"

हम सोचते। किसी से पूछने की हिम्मत तो होती नहीं थी। मां का वह थप्पड़ याद आ जाता था।

जैसे तैसे बरसात विदा हुई और अपने पीछे छोड़ गई दु:ख भरे अपने निशान। चारों तरफ फैली हरियाली में अब मौजूद थी तबाही की बू। कितने ही खेतों, फसलों और इन्सानों को निगल गई थी वह बरसात ! बचपन की वह बरसात हमें आज भी याद है जब हैदर पूरी बरसात गांव में नहीं आया था।

दशहरा नजदीक था। बरसात ने मकानों की दीवारों की मिट्टी तक को नहीं छोड़ा था। मटकंधे घरों की दीवारों में तो पानी ने कच्चापन ला ही दिया था। फसल न के बराबर। मक्की खेतों में ही सड़ गई थी। लोग घरों को लीपने-पोतने में जुट गए थे।

उस दिन मां ने हमें सामने की पगडंडी से कुछ ऊपर लाल मिट्टी लाने के लिए भेजा। दीपू और लच्छू को साथ लेकर हम मिट्टी लाने चल दिए।

बांस की टोकरियों में थोड़ी-थोड़ी मिट्टी निकाल कर हमने भर लीं। फिर गुलेल हाथ में लेकर हम बान के दरख़्तों पर फुदकती छोटी-छोटी चिड़ियों पर पत्थर मारने लगे। हालांकि हमारे पत्थर बान की टहनियों और तनों से ही टकराते लेकिन चिड़ियां चौंककर इस डाल से उस डाल और इस पेड़ से उस पेड़ पर बैठ जातीं।

"अरे, हैदर ?—हैदर आ रहा है।" लच्छू जो कुछ पीछे था, वहीं से चिल्लाया। मुड़कर देखा, सचमुच हैदर था। लच्छू के बिलकुल पीछे आता हुआ। उसका हुलिया, अलबत्ता बिलकुल बदला हुआ था।

सर पर वह गोल टोपी नहीं थी। रूखे-उलझे अधपके बालों पर धूल की परतें जमी थीं। आंखों का कीच गहरा गया था। खिचड़ी दाढ़ी पर धूल और सूखे अनाज की परतें थीं। जिस्म पर पहने कपड़े चिथड़े बनकर झूल रहे थे। पांव में धूल इस कदर जमी थी कि पांव जमीन का ही हिस्सा लगते थे।

इस अजीबो ग़रीब हुलिए में देखकर कोई भी उससे डर सकता था।

"पागल हो गया लगता है।" दीपू आहिस्ता से बोला।

"शू—छुक-छुक-छुक-छुक-छुक—भौं-भौं-भौं—घू-घू-ती—घू-घू-ती-घु-गुर्र-गुर्र-गुर्र।"

हैदर ने करीब आते ही अपने विशिष्ट अंदाज़ में पक्षियों व जानवरों की नकलें उतारीं। फिर एक जोरदार कहकहा लगाया। हम सचमुच डर गए। उसकी सुर्ख आंखों को देखते ही, जो उसके हंसते ही अचानक और भी ज्यादा सुर्ख हो गई थीं, हम सब भाग लिए। हैदर का भूत जैसे पीछा कर रहा था। टोकरियां हमने वहीं छोड़ दी थीं।

"क्या हुआ—क्या हुआ तुम लोगों को? क्यों भाग रहे थे इस तरा? मिट्टी नइ लाए?" घर पहुंचते ही मां ने पूछा।

"वो-वो-हैदर।" डर और भागने के कारण गला सूख रहा था। किसी तरह शब्द निकले। आंखें अब भी रास्ते पर लगी थीं। हैदर की वे आंखें—सुर्ख—लाल—उफ?

"क्या हुआ हैदर को?" मां कुछ परेशान-सी हो गई थी।

"आ रहा है।" अटकते से हमने कहा।

"आने दे। कोई, महाराजा है, जो तू इस तरह भागकर आया उसके आणे की खबर लेकर! कहां फेंक आया टोकरा? जा पएले उसको ला।"

"नइँ, अम्मा। हैदर को कुछ हो गया है। तू खुद देख न चलकर।"

"क्या बकवास लगा रखी ए तैंने? ठीक से बता।"

तभी हैदर पगडंडी के मोड़ पर प्रकट हुआ। कहकहे लगाता, झूमता, जिस्म पर लटके चिथड़ों की चिंदिया हवा में उड़ाता।

"अरे—ये तो पागल हो गया लगता ए! जा, तू अंदर जा, कइँ पत्थर न मारे।"

मां, उसे देखते ही घबरा गई। हम दोनों ने अन्दर आकर दरवाजा बंद कर लिया।

सचमुच हैदर पगला गया था। गांव भर में वह घूमता। किसी के घर न जाता। किसी पेड़ तले बैठकर रात गुज़ारता। लोग उसे खाने को कुछ न कुछ दे ही दिया करते। आधा वह खा जाता आधा ज़मीन पर बिखरा देता। उसके पागल होने का कारण किसी को समझ न आया।

"च-च—बिचारा। पता नइँ क्या हो गया इसको?" सुनकर वह ज़ोर से कहकहा लगाता। जानवरों की बोलियां बोलता। रात को भी वह कई बार ज़ोर से हंसता। दिन-भर कूड़ा-करकट चुनकर उसकी ढेरियां लगाता। खुद से ही बातें करता।

"मुन्नु ए जो—ए अम्मा जो—तिसा जो—मुंजो—।" ढेरियां लगाकर वह कहता, फिर लात मार कर कूड़ा बिखरा देता। इसके बाद वह जोरदार कहकहा लगाता। हम लोग सहम कर दूर हो जाते।

उस दिन जमकर बरसात हुई थी। ठण्ड बढ़ गई थी। हमारे घर के पास ही बांस की खपच्चियों और पुआल से बना, घास पत्ती रखने के लिए एक बाड़ा-सा था। हैदर रात-भर वहीं ठिठुरता रहा। बरसात में भी उसके कहकहे कभी-कभी गूंज उठते। रात गहराते ही खामोशी छा गई।

सुबह भी बरसात ही थी। थोड़ी कम थी।

पेशाब करने के लिए जैसे ही दरवाजा खोला, सामने भूत की तरह खड़ा हैदर दिखा।

जिस्म पत्ते की तरह कांप रहा था। कपड़ों से पानी टपक रहा था। मां रसोई में थी। बापू अभी उठे नहीं थे। तभी हमें उसके ब्याह की याद हो आई।

"तेरा ब्या' नई हुआ हेद्दर?" हमने उसे पूछ ही लिया।

"ब्या'···हां—ब्या' हो-हो—ब्या' मरी गी—मरी गी बचारी। पाणी—खूब पाणी खेत-घर-बकरी-अम्मा-चाचा-मौलवी हो-हो—सारे हड़ी गए। मुन्नु भी। हांऊ बची ग्या—हां—बची ग्या हो-हो बची ग्या।" हैदर की बात समझ से परे थी। तभी पीछे निःश्वास का स्वर सुनकर हम चौंके। मां थी। हैदर बोल ही इतना ऊंचा रहा था। और बोलते-बोलते हंस भी रहा था।

"बेचारा, तबी, मैं बी सोचूं।" मां को जैसे सब कुछ समझ आ गया था।

"चा' पीएगा?" मां ने पूछा तो वह कहकहा लगाने लगा। धुंधलके में उसकी भयावह आकृति आंधी में झूमती पुराने दरख़्त सी लहरा गई। मां चाय लाने अंदर चली गई।

"तेरा खुदा—कहां गया तेरा खुदा?" अपनी उत्सुकता में सहमते से पूछा।

"खुदा—हा हा-हा—हड़ी गया, खुदा हड़ी गया—बचाओ-बचाओ-लोको—कोई बचाओ मेरे खुदा जो, मेरी अम्मा जो, जोरुए जो, मुन्नुए जो—मेरे खुदा जो—।"

कहता-कहता वह अचानक भागने लगा, गांव से बाहर जाती पगडंडी पर। हम सकते की सी हालत में दरवाजे के दोनों पल्ले थामे, उसे दूर तक देखते रहे।

हैदर, फिर कभी नहीं दिखाई दिया।

[मुख्य तारघर, शिमला-171001]

पंख

□ दया पवार

प्रार्थना की घंटी बजी। हंसते-खेलते लड़के कतारों में आकर खड़े हो जाते हैं। लड़कों के सामने एक आड़ी कतार शिक्षकों की बनती है। आकर्षक व्यक्तित्व के धनी प्रिंसिपल उपासनी फर्श पर सीधे कदम फेंकते हुए एक लाइन में आते दिखते हैं। उनकी चाल से देखने वालों को लगता उनकी आधी ज़िंदगी एन० सी० सी० में बीती होगी। उनके आते ही बच्चों का शोर जाझ संगीत की अंतिम लय-सा घुलता जाता है। मुंह की व्हीसल से वे फुरफुर करने ही वाले थे कि वामन दौड़ता-भागता फाटक से भीतर आता हुआ दिखाई देता है। उसकी बुशशर्ट देखकर चारों ओर हंसी की लहर फैल जाती है। किसी हीरो-सी बुशशट वामन ने पहन रखी थी। उस पर भड़कीले रंगों से विभिन्न प्रकार की चित्रकारी की गई थी।

बड़े शहर से दूर, तहसील की जगह बसा यह ज्ञानदेव हाईस्कूल। बंबई-पूना की ओर से आने वाले आधुनिक फैशन को, यहां तक पहुंचने के लिए काफी समय लगता है। ऊंट छाप बीड़ी के विज्ञापन के लिए मोटर की टप पर खड़े होकर देखने का-सा आनंद सबको हो रहा था। हंसी पर नियंत्रण नहीं हो पा रहा था। सब लोग उसे देख हंस क्यों रहे हैं, यह बात वामन के ध्यान में नहीं आ पाती। 'शिंदे, यू फर्स्ट गेट आउट' प्रिंसिपल, वामन पर गुस्से में कड़के। इस आवाज़ से फिर शांति फैल गई।

धुआंधार बारिश में पिटे हुए मेमने-सा वह अपनी किताबें संभालता हुआ अपनी कक्षा की ओर बढ़ता है। कक्षा 10 वीं 'अ' में वह आता है। वहां कोई भी नहीं है। सबके सामने अपमानित होने के कारण उसका मन खिन्न है। मेरा अपराध क्या है? इस प्रश्न का उसे कोई उत्तर नहीं मिल पा रहा था। कानों से टकराने वाला प्रार्थना का स्वर उसे मृत्यु गीत के समान लगता है। बचपन से ही इतनी अवहेलना क्यों भला होती है। यह जीवन कब तक जिया जाए? इन विचारों से वह दुःखी होता है। उसका हृदय बरसाती बादलों-सा दुखों से भर जाता है। वह बेंच पर बैठता है। उसका गला भर आया। परन्तु प्रार्थना से लौटते, लड़कों की आवाज़ सुनकर वह अपने आपको संभाल लेता है।

क्यों रे वामन्या, हीरो के ख्वाब देखता है? अच्छी पिटाई हुई न? सबसे आगे आता हुआ सुभाष, हंसी उड़ाता बोला।

"अरे रहने भी दो, वह परांजपे पर 'लाइन' मारता है।" अभी तक कक्षा में लड़कियां नहीं आईं, यह देखकर सुधीर भी खिल्ली उड़ाता है—"अरे कहो, ज़रा आईना देख ले।" सुभाष

ने फिर जलती तीली डाली। सब लड़के हंस रहे हैं, ऐसा वामन को लगा। सबकी नज़रें तेजाबी-सी छिटकने लगती हैं। इतने में सामंत सर कक्षा में आते हैं। वामन को कुछ राहत मिली।

"वामन शिंदे कौन है ? बड़े सर ने ऑफिस में बुलाया है।" स्कूल का चपरासी दरवाजे से ही पूछता है। कक्षा की नज़रें फिर वामन की ओर मुड़ीं। वामन को लगा कि अब अच्छा-खासा 'प्रसाद' मिलेगा। टेबल पर हाथ रखकर बड़े सर रूल से हाथ फोड़ डालते हैं, ऐसा उसने सुन रखा था। अपराध न होते हुए क्यों कर सहना यह सब—सोचते-सोचते ही वह प्रिंसिपल के सामने खड़ा हो गया। प्रिंसिपल अंगूठी से खेल रहे थे।

"क्यों शिंदे सरकार ! आपका बहुत ख्वाब बढ़ गया ! अरे तुम श्येड्डल्डकास्ट हो ना ? तुम्हें इस प्रकार की बात क्या शोभा देती है ? आदमी कैसा होना चाहिए—सादा जीवन, उच्च विचार ! महात्मा गांधी इतने बड़े महापुरुष, पर इंग्लैंड जाते समय भी उन्होंने अपना सादा जीवन नहीं छोड़ा। अपना देश दरिद्र-नारायण है। इसकी जानकारी होनी चाहिए।" प्रिंसिपल के हाथ सोने की अंगूठी के लाल सुर्ख हीरे ने वामन का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। वह मणि कहानियों में सुने सांप के मस्तक के तेजपुंज के समान उसे लगी। उपदेश करने वाले सर ने टेरीलीन के ऊंचे कपड़े पहने हैं। चेहरे पर स्नो पावडर पुता लगता है। ऊंचे इत्र की गंध वातावरण में फैली है। यह सब वामन के ध्यान में आता है। वह बोलने की कोशिश करता है—

"पर सर।"

"मैं कुछ नहीं सुनना चाहता, तुम दामाद हो न सरकार के। स्कूल में फीस तो भरेंगे नहीं, तब ऐसे नखरे तो सूझेंगे ही। सीधे कक्षा में जाओ। फिर इस प्रकार के कपड़े पहनकर मत आना।" वामन का गला सूख गया। बड़े सर टेबल पर हाथ फोड़ भी देते। तब भी कोई बात नहीं थी। पर मन को चुभने वाली यह बात नहीं करनी थी। वह उदास मन से बाहर निकला। जब वह कक्षा में आया तब संस्कृत का पिरीयड चल रहा था। सामंत सर 'सुदोप सुदः' पढ़ा रहे थे। वह बेंच पर बैठते हुए चारों ओर नज़रें दौड़ाता है। उसे लगा सब उसे मरते देख हंस रहे हैं। पढ़ाई में उसका मन न लगता। पड़ोस की कक्षा में विद्यार्थी ऊंची आवाज में कविता गा रहे हैं। वह शब्दों को सुनने लगता है। तिलक की 'कितनी यह क्रूरता' कविता है।

"हाय छलछल रक्त से, वह देह कोमल थी सनी
औ उसी घायल दशा में नीड़ लौटी पक्षिणी'

इन पंक्तियों को सुनकर उसे लगा कि उसी की मनोदशा का वर्णन किया जा रहा है। पक्षिणी की जगह वह खड़ा है। इन कपड़ों के कारण मेरी दुर्दशा हुई। घर पहुंचते ही ये कपड़े जला देने चाहिए। असंख्य विचारों की उलझन उसके दिमाग में कौंधने लगती। कपड़े किन परिस्थितियों के बीच खरीदने पड़े, ये बातें उसे याद आने लगती हैं।

दीवाली की छुट्टियों में वह अपने चाचा के घर बंबई गया हुआ है। हर बार छुट्टियों में चाचा के घर जाना ही चाहिए, ऐसा उसे नहीं लगता। पर छुट्टियां होते ही मां उसे बंबई जाने के लिए कहती रहती है। अंततः उसे मां का कहना मानना पड़ता है। बंबई जाने से दो जोड़ी कपड़े, किताबें आदि उसकी झोली में आ ही जाती हैं। अपना और अपनी छोटी बहन का पेट भरते-भरते मां किस प्रकार खून-पसीना एक करती रहती है, यह वह रोज देखता है। मैं

पढ़कर बड़ा बनूं, ऊंची नौकरी लगे, इस आशा में घर-संसार की गाड़ी वह खींची जा रही है। मां की मेहनत देखकर वह बेचैन हो उठता है। कम-से-कम आज तो वह कुछ भी नहीं कर सकता। यह मजबूरी उसके चेहरे पर झलकती रहती है।

चाचा जिस बस्ती में रहते हैं, वह बस्ती वामन के सामने घूम जाती है। बस्ती याद आते ही उसके शरीर पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस पत्थर की चाल में लोग कैसे रहते हैं, इस बात का उसे आश्चर्य होता है। आए दिन मां-बहनों का 'उद्धार' होता सुनाई पड़ता है। सभी तरफ गंदगी, खुली नालियां, चूहों-घूसों का आना-जाना, जीने के नीचे हाथ भट्टी में अड्डा। वातावरण में अजीब-सी बदबू। चाचा के घर में जगह की बड़ी तकलीफ थी।

चाचा-चाची उनके दो बच्चों के अलावा और दो उप-किराएदार। रात को कहां सोना, यह प्रश्न वामन को हमेशा सताता रहता।

चाचा के वेतन का दिन वामन को याद है। नशे में धुत्त चाचा घर आते हैं। उन्हें यदि किसी ने नहीं संभाला तो वे बिन पेंदे के लोटे जैसे लुढ़क जायेंगे, ऐसा वामन को लगता। उनका यह रूप देखकर वामन का हृदय फट जाता है। ऐसे नशे में, जुए के अड्डे पर बैठकर वे सारा वेतन ही साफ कर आए होंगे। फिर मुझे कपड़े, किताबें कैसे मिलेंगे। यह चिन्ता वामन के मन में आती रहती।

"वामन कहां है ?" चाची के हाथ मिठाई का पेकेट देते हुए वे करीब-करीब चिल्लाते। वामन सामने जाकर खड़ा हो जाता है। चाचा के मुंह से शराब की दुर्गंध से वामन का जी मिचलाने लगता है।

"अरे वामन, मैंने तेरे बाप को जबान दी है। तुझे आंबेडकर राव जैसा बॅलीस्टर बनाऊंगा। तभी कुल का नाम उठा सकूंगा।" चाचा शराब के नशे में बड़बड़ाते।

वामन को बचपन में बाप की याद आने लगती है। शराब पी-पीकर अपना बाप कलेजा फटने से मरा। मरते समय कलेजा चीरकर निकलता हुआ आक्रोश, आज भी उसे थर्रा देता है। जब अपना बाप चौबीस घंटे शराब पीता, तब चाचा शराब को छूते भी नहीं थे। अखाड़े में जाते, लाठियां मांजते, गोटी-सा शरीर था। बाप के मरते ही चाचा क्यों भला शराब पीने लगा ? आज तक उसे इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला। "चल, तेरे कपड़े खरीद दूं"—चाचा खुशी में था। चाचा की बात सुनकर चूल्हे के पास बैठी चाची चिल्लाई—"अहो ! इसके लिए तो सब लेते हो। कल बड़ा होगा, अच्छी तनख्वाह पाएगा तो तुम्हारे मुंह पर थूकेगा भी नहीं।" "चुप बैठ गधी कहीं की। औरतों की अक्ल हमेशा चूल्हे में ही रहेगी।" ऐसी डांट-फटकार देकर पैरों में चप्पल डालकर बाहर निकल पड़ते हैं।

रुआंसा हो वामन चाचा के पीछे-पीछे चलने लगता है। चाचा-चाची के हमेशा झगड़े होते हैं। चाचा कभी चाची की बातें मन पर नहीं लेता। परन्तु, मैं कितने दिनों तक इस तरह इन पर बोझ बनूंगा। यह विचार उसे सताने लगता। बीच में ही स्कूल छोड़कर नगरपालिका के कचरा-विभाग में भरती होकर अपने पैरों पर खड़े होने का कई बार विचार उसके मन में आया। परन्तु रास्तों के मेनहोल में कैसे उतरा जाए, दुर्गंधपूर्ण डिब्बे कैसे उठाए जाएं, इन सबसे उसे घृणा थी। फिर उसके मन में कुछ बनने की आकांक्षा जागती। वह सोचता गरीबी से, अपमान से, बाहर निकल सकूंगा—वह आशाजनक कदम उठाने लगता।

गोलपीठा के पास वे आए। रेडीमेड कपड़ों की, लाइनों से सजी दुकानें वामन को अलीबाबा की गुफाओं के समान लगतीं। चाचा ने एक दूकान पसंद की, वे दोनों भीतर जाते हैं। दूकान में काफी भीड़ रहती है। चाचा वामन के नाप के कपड़े निकालने को कहते हैं। उनके सामने वह कपड़ों का ढेर रख देता है। उनमें से वामन नीली पेंट और सफेद शर्ट चुनता है। यह देखकर चाचा चिढ़कर आग बबूला हो गए—"भोसड़ी के, कुछ समझता है या नहीं। अंग्रेजी स्कूल में पढ़ता है न रूवाबदार कपड़े पहनकर तहलका मचा देना चाहिए।" वामन अपने चारों ओर देखता है। चाचा की बात सुनकर सभी हंस रहे थे। वामन का सिर लज्जा से झुक जाता है।

"ओ भाई जरा ऊंचा कपड़ा बताओ।" चाचा ने दुकानदार से कहा।

"आप नहीं ले सकेंगे।" दुकानदार ने चाचा के स्वाभिमान को छेड़ते हुए कहा।

"हमको मामूली समझता है ?" इतना कहकर चाचा ने सौ का नोट जेब से निकालकर पटक दिया।

निशाना सही जगह लगा, यह सोचकर दुकानदार फैशनेबल कपड़ों का बॉक्स चाचा के सामने खोलता है। चाचा उनमें से एक जोड़ी चुनते हैं। वास्तव में चाचा के चुने हुए दोनों कपड़े वामन को बहुत भड़कीले लगे। चाचा की बात यदि नहीं मानी तो घर पहुंचकर चाचा सारी पीढ़ियों का खड़े-खड़े 'उद्धार' कर देंगे, इस बात से डरकर वह कपड़ों का बंडल हाथ में ले लेता है। काउंटर पर पैसे देकर वे दुकान से बाहर आते हैं। चाचा ने अब रास्ता बदल दिया, यह बात वामन के ध्यान में आई। कामाठीपुरा की पहली गली से वे जा रहे थे। रास्ते के दोनों ओर वेश्यालय थे। रात के 'धंधे' की शुरूआत नहीं हुई थी। औरतें दांत घिस रही हैं। कहीं चेहरे पर रंग-रोगन लगाया जा रहा है। कुछ हृष्ट-पुष्ट औरतें मिनी स्कर्ट पहनकर अपनी खुली जांघें दिखाती खड़ी रहती हैं।···शुक···शुक करतीं, आने-जाने वाले लोगों को विचित्र इशारे करके कुछ कह रही हैं। वामन को लगा—पिंजड़े में बंद मांस-खंड हैं ये सब। गली से जाने में उसे घृणा हो रही थी।

"क्यों बे लंबू दादा—बड़ी ऊंची गरदन से जा रहे हो।" रास्ते के किनारे के घर से आवाज आती है। वामन देखता है। नाक में चमकदार नथ पहनी औरत, चाचा को बुला रही है। औरत की पीठ पर बाल खुले पड़े हैं। पहनी साड़ी से उसके शरीर का कसाव और अधिक स्पष्ट दिख रहा है। वह औरत अपने चाचा से हाथ चला-चलाकर बातें कर रही है। वामन को बड़ा आश्चर्य होता है।

"बैठो लंबूदादा, चाय पीकर जाओ।" वह चाचा का हाथ पकड़कर दरवाजे की सीढ़ियों पर बैठती है। ऊंची आवाज में उसने 'दो कम पानी की चाय' का ऑर्डर बाहर दिया। "यह मेरा भतीजा, अंग्रेजी स्कूल में पढ़ता है। उसके लिए कपड़े लेने गया था।" चाचाजी गर्व से बोले। वह औरत वामन की ओर प्रेम से देखने लगी। उसकी नजर वामन को अच्छी नहीं लगी। इस प्रकार के लोगों से चाचा की पहचान है, यह जानकर वामन को धक्का लगा। उसको वहां का वातावरण असह्य हो गया। जब चाचाजी बात करने में अत्यधिक व्यस्त हो गए, तब वामन चुपचाप वहां से घर की ओर चल पड़ा।

आसपास वामन नहीं है, यह जानकर चाचा परेशान हुए। लड़का कहीं भटक तो नहीं

गया, यह शंका भी मन में आयी। तमतमाए हुए वे घर आए तब वामन उन्हें किताब पढ़ता दिखा। उसे देखकर वे भड़क उठे—"कहां मर गया था ?"

उसके कुछ न बोलने से, वे गुस्से से करीब-करीब उसके ऊपर हमला-सा करते हुए चिल्लाए, "अरे तुमको क्या लगता है ? चाचा जैसा गोबर खाता, वैसा तुझे भी खिलवाएगा ? •••के अभी अपने गांव चले जाओ। फिर कभी मुंह मत दिखाना।"

यदि एक शब्द भी बोला तो वे मुंह तोड़ देंगे। अपने चाचा अच्छे हैं या बुरे हैं—इन्हीं विचारों में वह खो गया था। चाचा के उपकारों के बोझ तले वह दब गया था। उसी प्रकार चाचा के बारे में उसे बहुत निराशा भी हो चली थी। कोई भी उसे नहीं समझ पा रहा है, इस भावना से वह व्यथित हो जाता है। वह रुआंसा हो जाता है। दीवार का सहारा लेकर फफकने लगता है।

"शिंदे स्टंड अप।" बहुत देर से शिंदे का ध्यान कक्षा में नहीं है, यह जानकर सामंत सर चिल्लाते हैं। अपने पिरीयड में शिंदे अचेत सोया है, यह देखकर उन्हें बहुत गुस्सा आया। वामन उठ खड़ा हुआ। उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली।

"तुम अभी कक्षा के बाहर निकल जाओ। तुम्हारे कारण दूसरे लड़कों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।" सामंत सर ने उसे ताकीद दी। वामन किताबें जमा करता है। पुस्तकें जमा करते समय उसके आंसू नहीं रुकते। पड़ोस की कक्षा में लड़के कविता की अंतिम पंक्तियां गा रहे थे।

मुख खुला था और
खग ने पैर थे फैला दिए
पंख पहले कट चुके थे,
सांस-क्रम भी खो दिए।

वामन को लगा—कविता की पक्षिणी की तरह उसके पंख भी काट दिए गए हैं।

अनुवाद : दामोदर खड़से

आशा

☐ **पिरिमकुल कादीरोव**

[पिरिमकुल कादिरोव : उज़बेकिस्तान (रूस) के लेखक। ताजिकिस्तान प्रदेश में लेनिनाबाद क्षेत्र के एक गांव—केंगकुल में सन् 1928 में जन्म। 'उज़बेक प्रदेश पुरस्कार' विजेता। ताशकन्द विश्वविद्यालय के 'पूर्व पाठ्यक्रम' विभाग के स्नातक। पहली कहानी सन् 1950 में प्रकाशित।

प्रस्तुत उज़बेकी कहानी युद्ध की त्रासद पृष्ठभूमि पर आधारित है।]

रात के अंधेरे में किसी ने दरवाज़े पर दस्तक दी। बरामदे में सो रहे अलीशेर ने उसे नहीं सुना। लेकिन फिर जब ज़रा ज़्यादा ज़ोर से थाप दी गई तो दरवाज़ा चरमराता हुआ खुल गया और इकबाल आपा बाहर बरामदे में आ गई। अली शेर उछल कर जागा, "ठहरो ज़रा," साथ ही उसने अंधेरे में कुछ वस्त्र फेंके।

इक़बाल आपा ने अपनी उत्सुकता को दबाते हुए हौले से कहा, "जल्दी करो बेटा। कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम्हारे अब्बू ही हों?"

"कौन हो सकता है?" अर्ध जागृत अवस्था में उसके पुत्र ने पूछा।

"तुम्हारे अब्बू।"

"अम्मी, लगता है शायद वो न हों," उसने कहा और बरामदे के पार गेट की ओर दौड़ पड़ा।

अलीशेर उमरजान के पिता को लड़ाई के दिनों 'लापता' घोषित कर दिया गया था, यह कोई तीस वर्ष से भी पहले की बात है।

इक़बाल आपा को इस दुनिया में मृत्यु-संदेश से सबसे अधिक डर लगता था। एक 'लापता' इन्सान की उम्मीद और प्रतीक्षा उस भयानक सत्य से कहीं बेहतर है। उसके लिए यह एक विश्वास की वस्तु थी कि एक दिन उसका पति वापस आ जाएगा, इसीलिए प्रत्येक दस्तक पर वह आशापूर्ण निगाहों से गेट को ताकती।

अलीशेर जब बालक था तब वह भी इस बात पर विश्वास करता था। लेकिन ज्यों-ज्यों वह बड़ा हुआ, यह आश्वासन टूटता गया। अब उसे पूर्ण विश्वास था कि उसके पिता मारे जा चुके हैं। यदि वह जीवित होते तो वह अपनी पत्नी और बच्चों के पास अवश्य गए होते। यदि वह जीवित होते तो कम-से-कम उनके बारे में जानने के इच्छुक तो होते, चाहे वह दुनिया के दूसरे सिरे पर ही क्यों न होते।

लेकिन इक़बाल आपा का विश्वास बना रहा।

युद्ध काल में कई कुछ होता है। शायद उसके बच्चों के पिता अब भी जीवित हों, और एक दिन वह आ जाएं।

अलीशेर यह मानता था कि उसके पिता निश्चय ही मर चुके थे, लेकिन वह यह जानना चाहता था कि किस प्रकार लड़ते हुए वह वीरगति को प्राप्त हुए होंगे। उसे पता चला कि मास्को में इस प्रकार की एक विशिष्ट सेवा है जो लड़ाई के बाद हुए लापता आदमियों की जानकारी देती है। इसलिए उसने उनसे सम्पर्क किया। अपने पिता का एक फोटो और अंतिम पत्रों की प्रतियां भेजीं। मास्को से समाचार मिला कि उसके पिता के अधिकतर साथी पश्चिमी यूक्रेन में तरनोपोल की रक्षा करते हुए मारे जा चुके हैं। हो सकता है उसके पिता भी उनमें से एक रहे हों। लेकिन ऐसा कोई प्रमाण नहीं था जो यह साबित करता। तरनोपोल की मुक्ति के बाद वह एक बार फिर उन दुश्मनों के नियन्त्रण में चला गया था, जिन्होंने बहुत से संग्रहालयों को नष्ट कर दिया था।

मान लिया कि लिखित प्रमाण नष्ट हो गए हों, परन्तु प्रत्यक्षदर्शी शायद अब भी हों। अलीशेर ने स्थानीय सेनाधिकारियों को लिखा, फिर उसे बहुत से स्कूली छात्रों के 'युवा पथिक, कहलाने वाले स्वयं सेवी संगठनों का ख्याल आया जो लापता लोगों के बारे में जानकारी जुटाते थे। उसने उनको भी लिखा। एक पत्र में युवा-पथिकों ने लिखा कि उमरजान रखीमोव के कोई नजदीकी रिश्तेदार तरनोपोल आ जाएं। इक़बाल आपा तो नहीं जा सकीं, उसकी अवस्था भी ऐसी थी और स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था—उसे मधुमेह और रक्तचाप की शिकायत थी। ऐसी स्थिति में अलीशेर ने कहा कि वह जाएगा। परन्तु उसकी बहन ने इसका विरोध किया।

"तुम्हें अब्बू की कोई याद नहीं है। तुम तब बच्चे ही थे। लेकिन मुझे उनकी अच्छी तरह याद है। मैं आऊंगी।"

मख़फूजा को तरनोपोल आए एक सप्ताह हो गया था। अत: जब गेट पर दस्तक हुई तो अलीशेर ने सोचा शायद यह मखफूजा हो। उसने अंधेरे में बिजली का स्विच ढूंढ़ा।

"तार है।" गेट के दूसरी ओर से भारी आवाज़ आई।

अलीशेर ने दस्तखत किए और लिफाफा खोला। इसी बीच इकबाल आपा दोशाला ओढ़े सीढ़ियां उतर रही थी।

"अब्बू मिल गए। कियेव से शाम की उड़ान भर रही हूं। मखफूजा।"

"मिल गए।" अति उत्साह से मुस्कराते हुए वह मां की ओर मुड़ा।

"यह मख़फूजा का तार है।"

"वह क्या लिखती है? क्या उसके अब्बू मिल गए?"

"हां, उसने यही लिखा है।" लेकिन तभी उसे संदेहों ने घेर लिया—अधिक से अधिक उसने पिताजी की कब्र को खोज निकाला हो।

लेकिन उसकी मां को कोई संदेह नहीं था।

"या खुदा! वो अब तक कहां रहे! वो घर क्यों न आए?"

उसको तथा उसकी बहन को पूरा विश्वास था कि उनके पिता मर चुके हैं, लेकिन ऐसा उन्होंने अपनी मां से कभी नहीं कहा ताकि उसकी आस बंधी रहे। फिर भी, मां को विश्वास दिलाना सम्भव नहीं था। इस समय भी उसे एकदम विश्वास था कि मख़फूजा को वो

जीवित ही मिल गए हैं।

"वह कब आएगी ?"

"रात के तीन बजे।" उसने अपनी घड़ी देखी, "चालीस मिनट के अन्दर।"

अलीशेर की पत्नी भी जाग गई थी। जल्दी से कपड़े बदल कर वह बाहर आ गई। अलीशेर ने कार निकाली और गेट से बचाते हुए बाहर ले गया। इकबाल आपा ने दोनों को जाते हुए देखा, फिर बरामदे में आ गई, जहां उसके तीन पोते सो रहे थे। उसने आसमान की ओर देखा। बादलों का कहीं निशान तक नहीं था। तारे चमक रहे थे और चांद उनके बीच तैरता हुआ चला जा रहा था।

इकबाल आपा कमरे के अन्दर चली गई, कुछ देर गहन चिन्तन में खड़ी रही, फिर एक निर्णायक मुद्रा में कोने में रखी पेटी की ओर मुड़ी। जिस कम्बल से वह ढकी गई थी उसको हटा दिया, दराज से चाबी निकाली, ताला खोला और पेटी को खोल दिया। ढक्कन उठाते ही उसने लौंग के इत्र की जानी-पहचानी खुशबू को महसूस किया। उमरजान को यह इत्र बहुत पसंद था। अत: इकबाल आपा ने यह इत्र उसके उन कपड़ों पर छिड़क दिया था जिन्हें उसने मोर्चे पर से लिखे पत्रों सहित बहुत सहेज कर रखा था।

उसका पीला टस्सर का सूट, उसकी उक्रेनी कढ़ाईदार कमीज के साथ बड़ी सफाई से तह करके रखा हुआ था। साथ में थे उसके ऊंचे जूते। मोर्चे पर से उसने लिखा था, "दो बच्चों को पालना तुम्हें कठिन तो लगेगा। लेकिन उन्हें तन्दरुस्त रखने के लिए कोई अनिच्छा न दिखलाना। अगर ज़रूरत पड़े तो मेरे कपड़े बेच देना, लेकिन बच्चों के लिए भोजन खरीद लेना, कपड़े हमें और बहुत मिल जाएंगे। मुख्य बात है—अपना और बच्चों का ख्याल रखो।"

लड़ाई के दिनों उसने अपने कपड़े और सब गहने, जो उसे शादी में दिए गए थे, बेच दिए थे। लेकिन उसने अपने पति के कपड़ों को संभाल कर रखा था—ताकि जब वह वापस आएं तो उन्हें पहनने के लिए कुछ तो हो। वर्ष में एक बार वह उनको पेटी से बाहर निकालती, आंगन में खुली हवा में टांगती, फिर उनकी तह लगाती और वापस पेटी में रख देती।

अलीशेर जब बड़ा हुआ तो वो सूट और कमीज़ें फैशन से बाहर हो गई थीं। अलीशेर अब एक शिल्पकार बन गया था। उसने कोशिश की कि वह अपने पिता के ऊंचे जूते पहने। लेकिन आज के नौजवान लोग ऊंचे बूट पहनने से नाक क्यों चढ़ाते हैं? उमर जान आका एक अध्यापक रहे हैं और हमेशा वैसे जूते पहनते रहे हैं। वह उनको तब तक पॉलिश करते रहते जब तक वे शीशे की तरह न चमक जाते।

इक़बाल आपा जानती थी कि उन कपड़ों को उस पेटी में वह क्यों संभाल कर रखे हुए है। उसका उमरजान वापस आएगा और ऊंचे बूटों को पहनकर हमेशा की तरह प्रसन्न होगा। उसे इसकी चिंता नहीं होगी कि अब उनका चलन है भी अथवा नहीं।

पेटी के पैंदे में एक बांसुरी भी थी। यह नीलमणि और चांदी जड़ित काशगरी बांसुरी थी जिस पर उसके पति को बड़ा गर्व था। वह व्यवसायी संगीतज्ञ तो नहीं था लेकिन प्रसन्नता के क्षणों में उस बांसुरी में से कोमल और करुणार्द्र धुनें निकालना उसे प्रिय था। उन धुनों के नाम तो उसे मालूम नहीं, लेकिन उनकी मिठास से अविभूत होकर उनको सुनना उसे अच्छा लगता था। दिल की किन्हीं गहराइयों में उन धुनों को वह अब भी सुन लेती है।

उसकी उम्र तेईस वर्ष की थी जब उनकी शादी हुई थी। वह जवान था, सुन्दर था, और उसको उसका यही रूप याद भी था। इससे अलग किसी दूसरे रूप में वह उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

इक़बाल आपा को बुढ़ापा-वृत्ति मिल रही थी। वह अपने पोतों का पालन-पोषण कर रही थी। लेकिन एक नवयुवती की कोमलता उसमें अब भी जीवित थी। उसने कई बार चाहा कि चाहे कुछ क्षणों के लिए ही सही, वह उन बीते वर्षों में लौट जाए जब वह बीस वर्ष की युवती थी। लेकिन इस स्वप्न को साकार होने के लिए उमरजान की वापसी ज़रूरी थी। मान लो वह अभी घर में आ जाएं—मख़फ़ूज़ा ने लिखा है कि वो मिल गए हैं। वह ऐसा कैसे लिखती यदि यह सत्य न होता।

वर्षों तक उमड़ती आशा एक चमकती ज्वाला के रूप में दहक उठी थी। उसने इस्त्री लगाई और अपने पति की जैकेट और पतलून पर फेरने लगी।

जब कार गेट के पास पहुंची तो भोर हो रही थी। वह सीढ़ियों से नीचे भागी। मख़फ़ूज़ा उसे गेट पर ही मिल गई। उसको चूमते हुए इक़बाल आपा ने महसूस किया कि उसके गाल आंसुओं से भीगे हैं और एक अंधकारमयी पूर्व चेतावनी से उसका दिल बैठने लगा। कार को जल्दी से खड़ा करके अली शेर उसके साथ हो लिया।

"अन्दर चलो, वहीं बातें करते हैं।" इक़बाल आपा को लगा कि अलीशेर बड़े अजीब ढंग से सम्मोहित-सा है। रास्ते में मख़फ़ूज़ा ने उसे सब कुछ बता दिया था।

जब तरनोपोल को विरोधियों ने दो बार जीत लिया तो उमरजान और उसकी यूनिट के सदस्यों ने एक मकान में शरण ले ली तथा यहां से ही वे उनसे जूझते रहे। जब जर्मन उनको वहां से खदेड़ पाने में असफल रहे तो उन्होंने वहां एक टैंक भेजा जिसने उस मकान को धराशाई करके समतल कर दिया। जब तरनोपोल को पुनः अंतिम रूप से मुक्त करवाया गया तो हमारे आदमियों के कुछ शव मिले जिन्हें इकट्ठा ही दफना दिया गया। एक लड़के को, जो उस घर में रहता था लेकिन उस समय वहां नहीं था, जब वह मकान तबाह कर दिया गया था, उमरजान की और उस द्वारा सुदूर उजबेकिस्तान के बारे में बताई हुई सभी बातें याद थीं। अब वही बालक पैंतालीस वर्ष का है और एक अध्यापक है। जब तरनोपोल के 'युवा पथिक' संगठन के लोगों को अलीशेर का पत्र मिला था तभी उन्हें वह अध्यापक मिल गए थे।

सांवली, सुन्दर, नयन-नक़्शों वाली मख़फ़ूज़ा बहुत कुछ अपने अब्बू से मिलती जुलती थी। जब वह अध्यापक मख़फ़ूज़ा से मिले तो तुरन्त ही उन्होंने उन दोनों की समानता को भांप लिया, और उमरजान आका की याद एकदम ताज़ा हो गई। यहां तक कि कैसे बाकी लोग उन्हें केवल 'उमर' कहकर बुलाया करते थे। उस अध्यापक ने बताया कि उमरजान रखिमोव कितनी बहादुरी से लड़े थे और किस प्रकार उन्हें एक ही कब्र में दफना दिया गया था। लेकिन उस वक्त उसे (अध्यापक को) उनका पूरा नाम मालूम नहीं था। वह उन्हें केवल 'उमर' नाम से ही जानता था, तभी तो उनका नाम संगमरमर के सूचना-स्तम्भ पर नहीं आंका गया है। अब वह नाम उस कब्र के सूचना स्तम्भ पर आंका जाएगा—उमरजान रखिमोव, जिन्होंने अपने देश के लिए अपने प्राण न्यौछावर किए।

मख़फ़ूज़ा ने अपने आंसू पोंछे।